प्रमुख स्मृतियों का परिचय एवं विषय वस्तु

विभिन्न निबन्धकार व भाष्यकार

Scanned with CamScanner

प्रमुख स्मृतियों का परिचय एवं विषय-वस्तु

इस अध्याय में प्रमुख स्मृतियों का परिचय व उनकी सङ्क्षिप्त तथा परिचयात्मक रूप से विषय-वस्तु को दिया गया है। यहाँ प्रमुख से तात्पर्य है कि जो स्मृतियाँ प्रकाशित रूप में प्राप्त हुई अथवा जिन स्मृतियों की पाण्डुलिपियाँ हमें प्राप्त हो सकीं। इसी आधार पर उनका परिचय तथा उनकी विषय-वस्तु को यहाँ दिया गया है। इनमें से कुछ स्मृतियाँ तो अति अल्पकाय हैं तथा उनमें एक विषय विशेष पर ही चर्चा प्राप्त होती हैं यथा कोकिल स्मृति इसमें गृहस्थ स्त्री की मृत्यु के उपरान्त किये जाने वाले पिण्डदानादि प्रक्रिया के समय स्त्री के पतिकुल की नहीं वरन् उसके पितृकुल के गोत्र का उच्चारण किया जाता है तथा इस स्मृति के अनुयायियों का मानना है कि मृत्यु के उपरान्त स्त्री पुन: अपने पिता के गोत्र में चली जाती है तथा यह कोकिल की भाँति होने के कारण इसका नाम कोकिल स्मृति रखा गया एवं उसका सपिण्डीकरण उसके पितृकुल में उसकी माता, नानी आदि से होता है न कि अपनी सास, आदि के साथ। इस प्रकार यहाँ स्मृतियों के परिचय एव उनकी विषय-वस्तु को समझाया गया है।

(१) मनुस्मृति—ऋग्वेद के अनुसार **सर्वासां प्रजानां पितृभूतो मनु:**[1] पिता को अपनी सन्तान के हित की शिक्षा देने के लिये वेद का ज्ञान देना आवश्यक था। इसीलिये मनु ने अपने पिता ब्रह्मा से जो वेदों का सारभूत लाख श्लोकों वाला ग्रन्थ पढा था।[2] उसे ही सङ्क्षिप्त कर भृगु, नारद आदि अपने दस मानस पुत्रों को सिखाया। इन महिर्षयों ने अपने शिष्यों को सिखाया। इस तरह परम्परा से वेद की सीख मनु के माध्यम से हम भी सीखते आ रहे हैं। इन महर्षियों ने स्वयम्भुव मनु द्वारा प्रदत्त ज्ञान को ग्रन्थित कर लिया था। उनमें महर्षि नारदमुनि द्वारा ग्रथित नारदीय मनुस्मृति और महर्षि भृगु द्वारा ग्रथित 'मनुस्मृति'—ये दो स्मृतियाँ वर्तमान में उपलब्ध हैं। इनमें नारदीय मनुस्मृति में प्रधान रूप से व्यवहार व विधिनियमों पर ही विचार किया गया है। और भृगुप्रोक्त मनुस्मृति में धर्म के प्राय: सभी अङ्गों पर चर्चा की गई है। यद्यपि ये दोनों स्मृतियाँ अलग-अलग मनुस्मृति व नारदीय मनुस्मृति के रूप में प्राप्त होती है।

मनु स्वयं ज्ञान के स्वरूप हैं। वेद के मन्त्रों के द्रष्टा ऋषियों ने मन्त्रों के दर्शन किये तथा उन्हीं ऋषियों ने धर्मशास्त्र का प्रणयन किया। प्रत्येक कल्प के प्रारम्भ में मनु वेद विहित धर्म का प्रतिपादन करते हैं। पराशर ने इस तथ्य को स्पष्ट रूप से लिखा है—

---

१ ऋग्वेद १.८०.१६

२ इदं शास्त्रं तु कृत्वासौ मामेव स्वयमादित:। विधिवद् ग्रह्यामास......।। मनु १.५८ तथा च नारद: ब्रह्मणा शतसाहस्रमिदं धर्मशास्त्रं कृत्वा मनुरध्यापित आसीत्, ततस्तेन च स्ववचनेन संक्षिप्य शिष्येभ्य: प्रतिपादितम् शतसाहस्रोऽयं ग्रन्थ: इति स्मरति स्म।। (मन्वर्थमुक्तावली टीका)

Scanned with CamScanner

कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्ती ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा:।
श्रुति: स्मृति: सदाचारा निर्णेतव्याश्च सर्वदा।।
न कश्चिद्वेदकर्त्ता च वेदस्मर्त्ता चतुर्मुख:।
तथैव धर्मं स्मरति मनु: कल्पान्तरान्तरे।।[3]

इसी प्रकार तैत्तिरीय संहिता व ताण्ड्य-महाब्राह्मण में आया है कि मनु ने जो कुछ कहा है वह सब औषध है—

यद्वै किं च मनुरवदत्तद् भेषजम्।[4] मनुर्वै यत्किंचावदत्तद् भेषजं भेषजतायै।[5]

मनु ने ज्ञान के आदि स्रोत को कैसे प्राप्त किया इसका वर्णन स्वयं मनु ही कर रहे हैं कि ब्रह्मा के द्वारा उनको ज्ञान प्राप्त हुआ और उसी ज्ञान को उन्होंने आगे ऋषियों को दिया। अत: ब्रह्मा ने मनु को शास्त्राध्ययन कराया। मनु ने दस ऋषियों को वह ज्ञान दिया।

इदं शास्त्रं तु कृत्वासौ मामेव स्वयंमादित:।
विधिवद् ग्राह्यामास मरीच्यादींस्त्वहं मुनीन्।

कुछ विद्वान् ऋषि मनु के पास आये और उन्होंने वर्णों व मध्यम जातियों के धर्मों व कर्त्तव्य कर्मों के सन्दर्भ में मनु से प्रश्न किये। तब मनु ने अपने शिष्य भृगु से उन ऋषि प्रश्नों के उत्तर देने के लिये कहा। इस प्रकार मनु ने जो भृगु ऋषि को पढ़ाया था। उसका वर्णन भृगु ने अन्य ऋषियों के समक्ष कर दिया। इसीलिये मनुस्मृति है न कि भृगु स्मृति। इस स्मृति में भृगु से प्राप्त ज्ञान के सम्बन्ध में शङ्का होने पर ऋषियों ने जो प्रश्न किये हैं। उनके उत्तर देने से पूर्व भृगु ने कई बार **मनुरब्रवीत, मनुराह** पदों का प्रयोग किया है। इस प्रकार ये सत्य प्रमाणित सिद्धान्त है कि मनुस्मृति के रचयिता मनु स्वयं ही हैं। भृगु इसके प्रथम वाचक हैं। मनुस्मृति कुल १२ अध्याय व २६८४ श्लोक हैं। अनुष्टुप् छन्द में लिखी हुई ये स्मृति अत्यन्त सरल भाषा में है। इस स्मृति में मनु महाराज ने सभी विषयों पर व्याख्यान दिया है। जन्म से मोक्ष पर्यन्त सभी विषयों की विशद विवेचना की है।

स्मृतियों की शैली व विषय प्रस्तुतीकरण सूत्र ग्रन्थों (कल्प) की भाँति हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये सूत्र ग्रन्थों के पूरक हैं। या हम ये कह सकते हैं कि स्मृतियाँ सूत्र ग्रन्थों के व्याख्या ग्रन्थ हैं। इसीलिये कई सूत्र ग्रन्थों के रचयिता स्मृतियों के भी रचयिता हैं। जैसे बौधायन, आपस्तम्ब, औशनस, गौतम, मानव, पारस्कर, वाधूल, कात्यायन आदि। अत: मनु के समय की गणना करते हुये उस आधार पर मनुस्मृति की कालगणना करना व्यर्थ का द्रविड़ प्राणायम ही कहा जायेगा। पराशर स्मृति ने प्रत्येक कल्प के प्रारम्भ में मनु के द्वारा धर्मशास्त्रों की रचना का उल्लेख, इस सम्बन्ध के सभी तर्कों का निरास करने में पर्याप्त है। ऋग्वेद में मनुवैवस्त का ऋषि रूप में वर्णन प्राप्त होता है। जिसमें ८अध्याय, अनुवाक ४ सूक्त २६-३० के ऋषि वैवस्वत मनु हैं। इस प्रकार कई ऋचाओं के मन्त्रद्रष्टा के रूप में मनु ऋषिरूप में हैं। मनुस्मृति पर मेधातिथि कृत मनुभाष्यम में प्रथम अध्याय के प्रथम श्लोक में मेधातिथि ने मनु के सन्दर्भ में लिखा है— **तत्र मनु: मनुर्वैर्यात्कश्चावदत्तदभेषजंमिति-ऋचो यजूंषि सामानि मन्त्रा: आथर्वणाश्च ये। सप्तर्षिभिस्तु यत्प्रोक्तं तत्सर्वं मनुरब्रवीदि त्याद्यर्थवादेतिहास-पुराणादिभ्य: प्रख्यात प्रभाव लोके, तत्प्रसिद्धसैववा निरूपित मूलजातेन....। मनुर्नाम कश्चित्पुरुष-विशेषोऽनेकवेदशाखाध्ययनविज्ञानानुष्ठानसम्पन्न: स्मृति परम्परासिद्ध:।[6]**

३ पाराशर स्मृति, १.२०-२१
४ तैत्तिरीय संहिता, २.२.१०.२
५ ताण्ड्यमहाब्राह्मण २३.१६.१७
६ मनुस्मृति, मेधातिथिभाष्य, १.१

Scanned with CamScanner

मनु स्मृति की विषय वस्तु—

मनु स्मृति का प्रारम्भ सृष्टि की रचना विषयक सूत्रों से होती है। इसमें मनु ने बताया है कि जल से सृष्टि की रचना हुई है। साथ मानव जाति के उत्पत्ति हेतु प्रथमत: ऋषियों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुये मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा आदि ऋषि एवं उसके उपरान्त देवता, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व पिशाचादि की उत्पत्ति का वर्णन किया। ये सभी प्राणात्मक ऊर्जा के रूप में हैं, ऐसा समझा जा सकता है। इसके उपरान्त विभिन्न प्रकार के पशु, पक्षी, मनुष्य आदि की उत्पत्ति का वर्णन किया है। जिसमें मनु ने प्रजा का चार प्रकार से विभाजन किया है जरायुज, अण्डज्ज, उद्भिज, स्वेदज व काल की उत्पत्ति एवं काल की इकाई का विभाजन। चार वर्ण एवं उनके कर्म आचार-वर्णन।

धर्म की उत्पत्ति एवं धर्म का स्वरूप बताते हुये धर्म के लिये वेद को ही प्रमाण माना, देश व परम्परा के अनुरूप आचार, द्विजातियों के संस्कार, सन्ध्या एवं गायत्री का महत्त्व, स्वाध्याय की विधि, विद्या और ब्रह्मचारी, विवाह के प्रकार, कन्या के लक्षण और सद्गृहस्थ के कर्त्तव्य पञ्चमहायज्ञ का महत्त्व व विधान, बलिवैश्वदेव की विधि, अतिथि सत्कार, श्राद्धवर्णन, भोजन के नियम, अकाल मृत्यु, भक्ष्याभक्ष्य विवेक आदि जैसे—

योऽत्ति यस्य यदा मांसमुभयो: पश्यतान्तरम्।
एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्य: प्राणैर्विमुच्यते।।

हिंसा निषेध व माँस न खाने वाले को अश्वमेध फल का अधिकारी बताया। सूतक, आशौच आदि का विस्तृत वर्णन। द्रव्य एवं शरीर शुद्धि। प्रतिव्रता स्त्रियों का महत्त्व, वानप्रस्थाश्रम के नियम, संयम व भोजन आदि, संन्यास आश्रम, सन्यासी के लिये कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म विवरण, राज्य व दण्ड व्यवस्था, न्यायालय व न्याय की प्रक्रिया, कर, राजा व प्रजा के परस्पर कर्त्तव्य व अधिकार, दोषी को दण्ड व निर्दोष को सुरक्षा दाय-भाग, रिक्थाधिकार, सम्पत्ति विभाजन, प्रायश्चित्त वर्णन आदि। अन्त में कर्म की विवेचना व कर्मफल का वर्णन प्राप्त होता है। मनुस्मृति का विलियम जोंस ने यूरोपीय भाषा में अनुवाद कर यूरोप में इसे प्रचारित व प्रसारित किया एवं वहाँ इसे अत्यन्त सम्मान के साथ देखा जाता था।

मनुस्मृति के कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। एक साथ छ: टीकाओं का प्रकाशन नारायणपुत्र विश्वनाथ के द्वारा मुम्बई से १८८६ हुआ। जिसमें मेधातिथि, सर्वज्ञनारायण, कुल्लूक, राघवानन्द, नन्दन व रामचन्द्र इन छ: की टीकाएँ एकत्र प्रकाशित हुईं। इसके अलावा भिन्नभिन्न स्थलों से कुल्लूक, मेधातिथि, आदि कइयों की टीकाएँ सतत् प्रकाशित होती रही हैं। इसके अलावा जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण दवे ने मनु स्मृति पर एक साथ नौ टीकाओं को भारतीय विद्याभवन मुम्बई से १९७२ में प्रकाशित करवाया। इसमें मेधातिथि, सर्वज्ञनारायण, कुल्लुक, राघवानन्द, नन्दन, रामचन्द्र, मणिराम, गोविन्दराज , भारुचि की टीकाएँ समेकित रूप से प्रकाशित हैं।

मनु का काल सम्बन्धी विवेचन—

पण्डित अनन्त शर्मा ने अपनी पुस्तक महाभारतीययुद्धोत्तर भारत की ऐतिहासिक काल-गणना के आत्मनिवेदन में मनु के काल सम्बन्धी विशद विवेचन दिया है। उस विवेचन को यहाँ प्रस्तुत करना अत्यावश्यक है। आधुनिक काल के विद्वानों ने इतिहास लेखन के लिये आवश्यक स्रोत के रूप में वाङ्मय के कुछ विषयों व ग्रन्थों की एक सूची प्रस्तुत की है। जो साधारणतया (१) वैदिकवाङ्मय, (२) उत्तरवैदिक वाङ्मय, (३) सूत्रवाङ्मय काल, (४) महाकाव्य-रामायण, महाभारत तथा पुराण। इस विभागक्रम को पूर्णत: यादृच्छिक अर्थात् आधारहीन माना जाना चाहिये। इसमें किसी प्रकार के प्रमाण रहित मनुस्मृति को

Scanned with CamScanner

प्राचीनता से दूर रखा है। प्राचीन भारत राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास में डॉ. विमलचन्द्रपाण्डेय का लेख है— ब्यूलर महोदय ने मनु का समय २०० ई. पू. से २०० ई. के मध्य रखा था। कालान्तर में डॉ. जायसवाल ने यह मत प्रतिपादित किया कि मनुस्मृति के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि मनु भी पुष्यमित्र शुङ्ग के समकालीन थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुस्मृति में उल्लिखित अनेक बाते पुष्यमित्र शुङ्ग की जीवन घटनाओं का स्मरण दिलाती हैं। इन बातों को देखने से ऐसा अनुमान होता है कि मनुस्मृति का लेखक पुष्यमित्रशुङ्ग को दृष्टि में रखकर ही ये बातें लिख रहा हो। कुछ भी हो इतना निश्चित है कि यदि मनु पुष्यमित्रशुङ्ग के समकालीन नहीं तो निकटकालीन अवश्य रहे होंगे। (पृ. ५०८ चतुर्थ संशोधित संस्करण) इस पर कुछ भी टिप्पणी करने से पूर्व प्राचीन भारतीय साहित्य में मनु से सम्बन्धित सन्दर्भों को देखना आवश्यक है—

(१) सम्राट् शूद्रक (कलि १९४५, ई.पू. ११५७) अपने सुप्रसिद्ध नाटक मृच्छकटिक में चारुदत्त को दण्ड देने के विषय में लिखते है। कि भले ही यह ब्राह्मण पापी हो किन्तु मनु के कथनानुसार यह अवध्य है। इसे सम्पूर्ण धन के साथ राष्ट्र से निर्वासित कर दिया जावे। मृच्छकटिक ९.३९, मनुस्मृति ८.३८०-३८१ के भावों को ही उद्घाटित करता है।

(२) महामनीषी चाणक्य, वात्स्यायन, मल्लनाग, पक्षिलस्वामी, अंगुल तथा असहाय नामों से प्रसिद्ध हैं। ये चन्द्रगुप्त मौर्य (ई.पू. १५३८-१५१४, आधुनिक मतानुसार ३२४-३००) के राज्य पर प्रतिष्ठापक, गुरु तथा महामात्य भी रहे हैं। भले ही ग्रन्थ रचना पूर्वकाल की रही हो, समय यही है इसमें दो मत नहीं हैं। वात्स्यायन का कथन है कि पूर्वकाल में प्रजापति ब्रह्मा ने प्रजा सृष्टिकर उस प्रजा की स्थिति बनाई रखने के लिये धर्म, अर्थ और काम नाम के त्रिवर्ग की सिद्धि के साधन रूप में शतसहस्र अध्याय के शास्त्र की रचना की (१.१.५) उसके धर्म सम्बन्धी एक भाग को स्वायम्भुव मनु ने पृथक् किया। इसी प्रकार चाणक्य ने अर्थशास्त्र में अनेक मनु को प्रस्तुत किया।

(३) प्रसिद्ध नाटककार महाकवि भास प्रतिमाटक में रावण जो ब्राह्मणवेष में है राम आदि को अपने परिचय में कहता है कि मैं कश्यप गोत्र का हूँ, साङ्गोपाङ्ग वेद का, मनु के धर्मशास्त्र का, महेश्वर के योगशास्त्र का, बृहस्पति के अर्थशास्त्र का, मेधातिथि के न्यायशास्त्र का तथा प्रचेता के श्राद्धकल्प का स्वाध्याय करता हूँ। रावण मानव धर्मशास्त्र का यानि कि मनुस्मृति का स्वयं को अध्येता बता रहा है।

(४) भास के पूर्व महाभारत है। भारतयुग के पश्चात् ९०-१०० वर्षों में उग्रश्रवा द्वारा कुलपति शौनक के आश्रमकुल में इसका प्रथम प्रवचन हुआ है। महाभारत में बारम्बार मनुस्मृति का उल्लेख है। जिसमें वनपर्व १८०.३०-३७, आदिपर्व ११९.३६ इसी प्रकार शान्ति पर्व में धर्मज्ञान विषयक एक संवाद सिद्धों व मनु का है इस संवाद को आदि काल का बताया गया है–

धर्मं पप्रच्छुरासीनमादिकाले प्रजापतिम्।
तैरेवमुक्तो भगवान् मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्।।[७]

आदिकाल में सिद्धों ने आश्रम में बैठे प्रजापति मनु को धर्मस्वरूप के विषय में पूछा उनके द्वारा पूछे जाने पर भगवान् स्वायम्भुव मनु ने कहा। यहाँ स्वायम्भुव मनु का नामोल्लेख प्रथम धर्मशास्त्रकार के रूप में कहा। इसी प्रकार आश्वमेधिक पर्व के ९२ वे अध्याय में मनु स्मृति को उद्धृत किया गया है—

पुराण मानवोधर्मः साङ्गोवेदश्चिकित्सितम्।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि नहन्तव्यानि हेतुभिः।।

७ महाभारत, शान्तिपर्व, ३६.३

Scanned with CamScanner

इस पद्य को महान् मीमांसाक कुमारिल भट्ट (वि.पू. ५००, ई.पूर्व ५५७) ने जैमिनिसूत्र ६.३.२७ के व्याख्यान में इस श्लोक को उद्धृत किया है। इस का अर्थ है कि पुराण, मनुस्मृति, अङ्गों सहित वेद तथा चिकित्सा शास्त्र अर्थात् आयुर्वेद इन चारों की सिद्धता इनके उपदेश से प्रमाणित हैं। हेतु यानि कि अनावश्यक तर्कजान से ज्ञान करने योग्य नहीं हैं। अत: हेतुओं से इन्हें नष्ट नहीं करें।

(५) महाभारत से पूर्व वाल्मीकि रामायण है। यहाँ भी मनुस्मृति के अनेक पद्य पढ़े गये हैं। यहाँ किष्किन्धा काण्ड से एक उद्धरण है। राम से किये गये अपने वध को बाली अधर्म मूलक बताता है। इसके उत्तर में राम कहते हैं कि 'तुम अपराधी हो पापी हो, तुम्हारे उद्धार के लिये तुम्हें यह दण्ड दिया गया है। जो राजा अपराधी की उपेक्षा कर जाता है वह दण्ड्य होता है। अत: इस दण्ड के द्वारा मैंने अपने आपको भी पापी होने से बचाया है।' राम मनु वचनों को उद्धृत करते हुये स्वयं को उचित बता रहे हैं—

श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ।
गृहीतो धर्मकुशलै स्तथातच्चरितं मया।।[८]

चरित्र रक्षक दो श्लोक मनु ने कहे हैं जो श्रुतितुल्य हैं अत: धर्मकुशलजनों ने इन्हें जीवन में ग्रहण कर लिया है। मैंने भी वही किया है। इस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्र मनु के आदेशों की श्रुतिवत् पालना कर रहे हैं। अतः ये लक्षाधिक वर्षों से सतत् चले आ रहे हैं। रामायण व मनु के पद्यों का समान अर्थ है। पुन: वैदिक वाङ्मय पर दृष्टिपात् करने पर ज्ञात होता है कि मैत्रायणी आरण्यक में अग्नि में दी गयी आहुति के महत्त्व के सन्दर्भ में जो कुछ कथन कहा गया है उसकी प्रमाणिकता मनु के कथन से की गई है— **यद्धविरग्नौ हूयते तदादित्यं गमयति तत्सूर्योरश्मिभिर्वर्षति तेनान्नं भवति। अन्नाद् भूतानामुत्पत्तिरित्येवं प्राहर।**

अग्नौ प्रास्ताहुति: सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याजायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं तत: प्रजा:।।

जो हवि अग्नि में आहुति के रूप में दी जाती है, वह आदित्य को प्राप्त होती है। आदित्य उसे रश्मियों के रूप में वर्षण करता है। उस वृष्टि से अन्न की उत्पत्ति होती हैं, अन्न से प्राणियों की उत्पत्ति होती है। ऋषि यही तो कहता है— अग्नौप्रास्ताहुति। भगवान् मनु पञ्च यज्ञ में दैवयज्ञ के विषय में कहते हैं कि— **दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम्।।**[९]

अग्निहोत्र रूप दैवयज्ञ के कर्म में लगा हुआ गृहस्थ इस चराचरा जगत् को धारण और पोषण करता है। यही नहीं संहिता का स्वयं का कथन है— **मनोर्ऋचो भवन्ति। मनुर्वै यत् किञ्चावदत् तद् भेषजमेवावदत् तद् भेषजत्वाय एवं (२.१.५)**। इस प्रकार वेद में भी मनु को कहा है। यह मनु के पर्याप्त प्राचीन होना अथवा जैसा कि पराशरस्मृति में जो कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्तौ करके लिखा है कि प्रत्येक कल्प के प्रारम्भ में मनु प्रकट हो कर धर्मशास्त्र का प्रणयन करते हैं। इसीलिये मनु की एवं मनु स्मृति की प्राचीनता स्वयं सिद्ध है। मनुस्मृति के प्रथम श्लोक पर टीका करते हुये मेधातिथि लिखते हैं— **तत्रमनु: नर्नुर्वैयत्किञ्चावदतरद्भेणज मिति-ऋचो यजूंषि सामानि मन्त्रा आथर्वणाश्च ये। सप्तर्षिभिस्तु यत्प्रोक्तं तत्सर्वं मनुरब्रवीदि त्याद्यर्थ वादेतिहासपुराणादिभ्य: प्रख्यात प्रभाव लोके तत्प्रसिद्धयैव निरूपित मूल जातेन। मनुननि कश्चित् पुरुष विशेषोऽने कवेदशाखाध्ययन विज्ञानानुष्ठानसम्पन्न: स्मृति परम्परा प्रसिद्ध:।** अर्थात् मनु ने जो कुछ

८ रामायण, किष्किन्धा काण्ड, १८.३०
९ मनुस्मृति ३.७५

Scanned with CamScanner

कहा है वही भेषज है। आदि तथा मनु एक पुरुष विशेष है, जिसने अनेक वेद शाखाओं का अध्ययन किया तथा तदनुसार विज्ञान के अनुष्ठान के साथ स्मृति के ज्ञान के लिये प्रसिद्ध है।

मनु के सम्बन्ध में अन्य विद्वानों ने भी चर्चा की है तथा उसकी प्राचीनता के सन्दर्भ में कहा है। डॉ. हरिनाथ त्रिपाठी जी ने अपनी पुस्तक 'स्मृतियों में भारतीय जीवन दर्शन' में इस पर विशेष चर्चा की है उन्होंने पी.वी. काणे महोदय के मनु के सम्बन्ध में विचारों पर लिखा है कि इस समय उपलब्ध मनुस्मृति के अध्ययन से प्रतीत होता है कि काणे ने जो प्राचेतस् मनु और स्वायंभुव मनु इस प्रकार दो मनुओं की कल्पना की है वह सम्भवत: दोनों एक ही थे क्योंकि मनुस्मृति में एक स्थल पर शङ्का उपस्थित की गयी है कि धर्ममूलक वेदों के रहते स्मृतियों के रचना की क्या आवश्यकता थी। इसके उत्तर में कहा है कि कालक्रम के प्रभाव से भविष्य में अधिकतम मानव वेद के गहन विषय को नहीं समझ सकेंगे यह सोकर त्रिकालज्ञ लोक पितामह ब्रह्मा ने अपने मानस पुत्र मनु को वेदों के सारभूत तत्त्व का एकलाख श्लोकों में उपदेश किया। इसके उपरान्त मनु ने ब्रह्मा के उपदेश को और सङ्क्षेप में करके भृगु को उपदेश दिया। जिसका कालान्तर में भृगु ने मनु के शब्दों का सङ्कलन किया—

इदं शास्त्र तु कृ त्वासौ मामेव स्वयमादित:।
विधिवद्ग्राहयामास मरीच्यादींस्त्वंहं मुनीन्।।
एतद्वोऽयं भृगु: शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेसत:।
एतद्धि मत्तोऽधिजगे सर्वमेषोऽखिलं मुनि:।
ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिमनुना भृगु:।
तानब्रवीदृषीन्सर्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति।।

इससे यह ज्ञात होता है कि आदि मनु स्वायंभुव ब्रह्मा के मानस पुत्र थे। उन्होंने ही अर्थ, धर्म सम्बन्धी सभी तत्त्वों का उपदेश किया जिसका सङ्कलन अर्थशास्त्र व धर्मशास्त्र के रूप में किया गया न कि दो मनुओं ने इसकी रचना की।। पाश्चात्य विद्वानों ने भी मनु के सन्दर्भ में तथा उनकी प्राचीनता से सम्बन्धित अपने दृष्टिकोण दिये हैं विलियम जोंस का कथन है कि यूनानी भाषा में 'माइनोस' आदि शब्द संस्कृत भाषा के मनु शब्द के ही विकृत रूप हैं।

वी. गुरु राजाराव ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि यदि हम यह अनुसन्धान दूसरों के लिये छोड़ दें कि ब्रह्मा का पुत्र मनु वही है जिसे क्रीट वालों का धर्मशास्त्र रचयिता माइनौस, ज्यूपीटर का पुत्र कहा जाता है (और जिसक विषय में कहा जाता है कि वही म्नयूनस का जिसने मिश्र देश के देवता हर्मीज से धर्मशास्त्र सीखा और मिश्र देश का प्रथम राजा बना) तो भी जोन्स के इस उद्धरण पर अवश्य ध्यान देना चाहिये कि दारा शिकोह का यह विचार कुछ अनुचित न था कि ब्राह्मणों का आदि मनु वही है जो मनुष्य जाति का पूर्वज समझा जाता है और जिसको यहूदी, ईसाई व मुसलमान आदम नाम से पुकारते हैं। इस प्रकार मनु के सन्दर्भ मे पाश्चात्यों का भी यही मत है कि मनु जो प्रथम राजा है वह सम्पूर्ण समाजों में एक ही है।

(२) नारद स्मृति (नारदीय मनुस्मृति)— यथा पूर्व में उल्लिखित है कि भृगु के समान ये स्मृति भी मनु स्मृति है किन्तु इसे नारदीय मनुस्मृति कहा जाता है। ये एक ऐसी स्मृति है, जिसमें मात्र व्यवहार सम्बन्धी विश्लेषण ही दिये गये हैं। इस स्मृति में व्यवहार सम्बन्धी विषय वस्तु को इस प्रकार व्यवस्थित किया गया है मानो ये कोई विधिसंहिता हो। नारद स्मृति के सन्दर्भ में मेक्समूलर ने कहा कि यदि यूरोपीय भाषाओं में हिन्दू साहित्य के प्रथम अनुवाद का नमूना नारदस्मृति रही होती तो

Scanned with CamScanner

इसे सर्वमान्य विधि पुस्तक के रूप में स्वीकार किया गया होता।[10] और सर हेनरी मेन ने उसमे पाये जाने वाले पुरोहित विधि के प्रभाव को अनदेखा कर दिया गया होता।[11]

नारदीय स्मृति में नारद ने प्रस्तुत किया है कि मनु प्रजापति आदि जिस समय राज्य कर रहे थे उस समय सब सत्यवादी थे और जब धर्म का ह्रास हुआ तो नियन्त्रण के लिये व्यवहार की प्रतिष्ठा की गई। इसी के लिये राजा दण्ड की नीति को धारण करने वाला बनाया। नारदीय स्मृति में विवाद के निर्णय की विधि, अर्थशास्त्र व धर्मशास्त्र के मध्य मतभेद में धर्मशास्त्र की मान्यता कोई भी सन्देह हो तो राजा द्वारा निर्णय कराये जाने का विधान, विनयन का प्रकार, लेख और साक्षी की सत्यता की जाँच। नारदीय स्मृति में विभिन्न प्रकार के विवाद पदों का उल्लेख करते हुये ऋणादान, उपनिधिक, सम्भूय समुत्थान, दत्ताप्रदानिक, अभ्युपेत्याशुश्रुषा, वेतनस्यानपाकर्म, अस्वामी विक्रय, विक्रीयासम्प्रदानमष्टमं, क्रीत्वानुशयो, समयस्यानपाकर्म, क्षेत्रविवाद, स्त्रीपुंसयोग, दायविभाग, साहसं, वाग्दण्डपारुष्यं, द्यूतसमाह्वयं, प्रकीर्णकं। इस प्रकार नारदीय स्मृति में अट्ठारह प्रकार के वाद बताए है। इसमें उनके निर्णय की प्रक्रिया आदि का वर्णन करते हुये दिव्य प्रकरण अन्तिम प्रकरण है। नारदीय स्मृति में अध्यायक्रम नहीं रहने से प्रकरणशः विभक्त हैं। इसके कई प्रकाशन हो चुके हैं इस पर भूस्वामी व असहाय के भाष्य प्रसिद्ध हैं। ट्रावनकोर की महारानी श्रीमती सेतु महारलक्ष्मी के शासन में तथा राजकीय मुद्रणालय में उनके आध्यक्षत्व में सन् १९२९ में प्रकाशित हुआ। सन् १८७६ में जूलियस जोली ने इंस्टीट्यूट ऑफ नारद के नाम से इसका अंग्रेजी अनुवाद लन्दन से छपवाया था। जूलियस जोली के नारद स्मृति के दो संस्कृत भाष्यों भूस्वामी व असहाय के आधार पर दो प्रकार से आंग्ल भाषा में अनुवाद किया, यह अत्यन्त श्रेयस्कर कार्य है।

(३) याज्ञवल्क्य स्मृति— याज्ञवल्क्य स्मृति महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा प्रणीत है। आकार में यह मनुस्मृति से लगभग आदि है। याज्ञवल्क्य ऋषि का विवरण वैदिक ऋषि परम्परा में आता है। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा में याज्ञवल्क्य का नाम प्राप्त होता है। याज्ञवल्क्य ने अपने समय के सभी धर्मशास्त्रकारों का नामोल्लेख किया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य एक महान् दार्शनिक के रूप दिखाई देते हैं। वैसे किसी एक ऋषि अथवा महर्षि के सम्बन्ध में एक ही स्थान पर समग्र रूप से ज्ञान प्राप्त नहीं होता। अपितु विभिन्न ग्रन्थों यथा उपनिषद्, पुराणों, रामायण, महाभारत व स्मृतियों में इनके बारे में विभिन्न स्थलों पर दिये गये विवरणों को एकत्र पढ़ने पर इनके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। याज्ञवल्क्य को शतपथब्राह्मण, बृहदारण्यकोपनिषद् व आरण्यक, तथा स्मृति के विद्वान् के रूप में देखा जा सकता है। पुराणों में इन्हें ब्रह्माजी का अवतार कहा गया है। श्रीमद्भागवत् महापुराण में इन्हें देवरात का पुत्र बताया गया है।[12] ये वेदाचार्य महर्षि वैशम्पायन के शिष्य हैं। इन्होंने अपने गुरु वैशम्पायनजी से वेदों का ज्ञान प्राप्त किया। एक बार गुरुजी से कुछ विवाद हुआ तो गुरु ने रुष्ट होकर कहा कि तुम मेरे द्वारा पढ़ी हुयी यजुर्वेद की शाखा को उगल दो। तब याज्ञवल्क्य जी ने अन्नरूप में वे सभी ऋचाएँ उगल दी जिनको अन्य शिष्यों द्वारा तीतर बनकर ग्रहण करने पर वही तैत्तिरीय शाखा बनी। तब उन्होंने भगवान् सूर्य की स्तुति की एवं उनसे विद्या प्राप्त की तब भगवान् सूर्य ने अश्वरूप में प्रकट होकर उन्हें यजुर्वेद के मन्त्रों का उपदेश दिया—

---

१० The secred boks of the east, vol. XXXIII, p XI by F.Maxmular.
११ Early law and custom, by Sir Henry man, page 42-43
१२ श्रीमद्भागवत् महापुराण, १२.६.६४

Scanned with CamScanner

एवं स्तुतः स भगवान् वाजिरूपधरो हरिः।

यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात् प्रसादितः।[13]

अश्व रूप सूर्य से प्राप्त होने के कारण शुक्ल यजुर्वेद की यह शाखा वाजसनेय या माध्यन्दिन नाम से प्रसिद्ध हुई एवं इसके द्रष्टा महर्षि याज्ञवल्क्यजी हैं वाजसनेयीसहिता के आचार्य होने के कारण ये वाजसनेय भी कहलाये। ये ही शतपथ ब्राह्मण व बृहदारण्यकोपनिषद् के भी द्रष्टा हैं। ये विदेहराज महाराज जनक के गुरु भी थे। याज्ञवल्क्य स्मृति के साथ ही ब्रह्मोक्त योगियाज्ञवल्क्य, बृहद्योगियाज्ञवल्क्य आदि स्मृतियाँ भी प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त याज्ञवल्क्यगीता, याज्ञवल्क्योपनिषद्, याज्ञवल्क्यशिक्षा आदि ग्रन्थ भी इनके नाम से प्राप्त होते हैं। गायत्री–भाष्य का इन्होंने ही सर्वप्रथम प्रणयन किया। यह स्मृति आचार, व्यवहार एवं प्रायश्चित्त इन तीन अध्यायों मे विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में पृथक्–पृथक् प्रकरण हैं।

(अ) आचाराध्याय—उपोद्घात, ब्रह्मचारी, विवाह, वर्णजातिविवेक, गृहस्थधर्म, स्नातकधर्म, भक्ष्याभक्ष्य, द्रव्यशुद्धि, दान, श्राद्ध, गणपकिल्प, ग्रहशान्ति, तथा राजधर्म ये तेरह प्रकरण हैं

(ब) व्यवहाराध्याय— साधारण व्यवहारमातृका, असाधारण व्यवहारमातृका, ऋणादान, उपनिधि, साक्षि, लेख्य, दिव्य, दायविभाग, सीमाविवाद, स्वामिपाल विवाद, स्वामिक्रिय, दत्ताप्रदानिक, क्रीतानुशय, अभ्युपेत्याशुश्रूषा, संविद्व्यतिक्रम, वेतनादान, द्युतसमाह्वय, वाक्पारुषय, दण्डपारुष्य, साहस, विक्रीयसम्प्रदान, सम्भूयसमुत्थान, स्तेय, स्त्रीसंग्रहण तथा प्रकीर्णक, ये पच्चीस प्रकरण हैं।

(स) प्रायश्चित्तप्रकरण— इसमें आशौच, आपद्धर्म, वानप्रस्थधर्म, यतिधर्म, प्रायश्चित्त, एवं प्रकीर्णक प्रायश्चित्त ये छः प्रकरण हैं। इस प्रकार प्रकरणों के विषयों से स्पष्ट हो जाता है कि इस स्मृति में सम्पूर्ण धर्मशास्त्र की विवेचना हो जाती है। यह स्मृति परवर्ती निबन्धग्रन्थों के लिये उपजीव्यता लिये हुये है।

मुख्य स्मृति का स्वरूप वि. ७५७ (ई. ७००) से यथातथ वैसी ही है जैसी वर्तमान में है।[14] याज्ञवल्क्य स्मृति पर कई टीकाएँ लिखी गईं। जिनमें विश्वरूप की बालक्रीड़ा, विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा, अपरादित्य की अपरार्क–व्याख्या तथा आचार्यशूलपाणि की दीपकलिका, नामक संस्कृत टीकाएँ अत्यन्त ही प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त बालबोधिनी, सुबोधिनी, बालम्भट्टी नामक अन्य संस्कृत टीकाएँ भी प्रसिद्ध है। ब्रह्मवादिन प्रेस, मद्रास से वर्ष १९१२ में यह एक साथ तीन टीकाओं सहित प्रकाशित हुई जिसमें मिताक्षरा, सुबोधिनी, व बालम्भट्टी है। इसके अलावा , अपरादित्य, विश्वरूप, शूलपाणि की टीकाओं के साथ भी प्रकाशित हो चुकी है। याज्ञवल्क्य स्मृति सम्पूर्ण रूप से तीन भागों में विभाजित है। एवं उन तीन भागों में उप–विभाग पूर्वक विभिन्न विषयवस्तुओं का स्थान दिया गया है। इसमें कुल १००० श्लोक हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति अनुष्टुप छन्द में लिखी गयी है।

(अ) ब्रह्मोक्त याज्ञवल्क्य संहिता— यह धर्मशास्त्र विस्तृत है एवं बारह अध्यायों में रचा गया है। इसमें १२ अध्याय में लगभग १४५२ श्लोक हैं। इसके प्रथम अध्याय में चार वेदों का वर्णन तथा उनकी शाखाओं का सविस्तार वर्णन नित्यकर्म और पञ्चमहायज्ञों का विधान तिलक के भेद, नैमित्तिक श्राद्ध यथा पिता की मृत्यु की तिथि पर जो श्राद्ध किया जाता है उसे एकोदिष्ट श्राद्ध कहा जाता है उसका वर्णन, अमावस्या, संक्रान्ति, व्यतीपात, गजच्छाया, सूर्य और चन्द्रग्रहण में स्नान करने

१३ श्रीमद्भागवत् महापुराण, १२.६.७३

१४ धर्मशास्त्र का इतिहास, पी.वी.काणे प्रथम भाग, पृ. ५१

का विधान व महत्त्व, आमश्राद्ध सत्तू, गुड़, पिण्याक, दूध इन द्रव्यों से किये जाने वाले श्राद्ध, नान्दीमुख श्राद्ध जो विवाहादि शुभकर्मों पर किया जाता है। प्रेतश्राद्ध व सपिण्डीकरण की विधि, ब्रह्मचारी के धर्म, स्नातक होने पर विवाह नव संस्कारों का वर्णन प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यन्त तिथियों पर विचार एवं तदनुसार देवपूजन आदि का वर्णन, दुष्ट स्वप्न के होने पर विनायक शान्ति तथा ग्रहशान्ति का विधान दानविधि, प्रायश्चित्त, आशौचवर्णन आदि विषयों पर विस्तारश: लिखा गया है।

(ब) बृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृति— इसमें योग का बृहद् रूप से वर्णन प्राप्त होता है। तथैव इसका नाम बृहद्योगियाज्ञवल्क्य नामकरण किया गया है। इसमें भी १२ अध्यायों में कुल ८९८ श्लोक हैं। मुनियों ने याज्ञवल्क्य जी से गायत्री, औङ्कार, प्राणायाम, ध्यान व सन्ध्या के मन्त्रों के सन्दर्भ में प्रश्न कर आत्मज्ञान हेतु जिज्ञासा की। इस प्रकार प्रश्न से ही यह स्मृति भी प्रारम्भ होती है। इस पर शेष एकादश अध्यायों में औङ्कार का माहात्म्य व ज्ञान का वर्णन साकार-निराकार दो प्रकार के ब्रह्म का वर्णन और औङ्कार की उपासना, ब्रह्मज्ञान को विकास करने वाली बताई गई है। सप्तव्याहृतियों का निर्णय तथा भू आदि व्याहृतियों से सात लोकों , सात छन्दों और सप्तदेवताओं का माहात्म्य, गायत्री मन्त्र का निर्णय, गायत्री न्यास करने की विधि, सन्ध्या करने का महात्म्य, स्नान का मन्त्र, विधि, तर्पण-विधि, जपविधि, प्राणायाम-प्रत्याहार की विधि, भगवान् में ध्यान लगाने की विधि, गायत्री मन्त्र की व्याख्या, अध्यात्मनिर्णय, अन्न का महत्त्व, अध्यात्मवर्णन, सूर्योपस्थापन की विधि, आत्मयोग का वर्णन, विद्या और अविद्या, ज्ञानकाण्ड व कर्मकाण्ड का वर्णन किया है।

(४) अत्रि स्मृति— अत्रि स्मृति में पाँच अध्याय हैं। अत्रिस्मृति के प्रारम्भ में आत्मशुद्धि के विषय को प्रस्तुत किया है। इसके अन्तर्गत प्राणायाम विधि तथा उसके लाभ व गायत्री मन्त्र का वर्णन किया। द्वितीय अध्याय में मन, वाणी और कर्म से किये हुये पापों की मुक्ति का व्याख्यायित किया है। इसके लिये स्मृति के रचनाकार महर्षि ने कूष्माण्ड सूक्त आदि से पापों का शोधन, अघमर्षण सूक्त से स्नान, उपांशु जप का माहात्म्य, आदि का वर्णन है। तृतीय अध्याय में वेदाभ्यास का माहात्म्य, पुराण व इतिहास का, शतरुद्री आदि सूक्तों का माहात्म्य। विभिन्न प्रकार के दान यथा सुवर्ण, तिलादि दानों का महत्त्व वर्णित किया है। चतुर्थ अध्याय में रहस्य पाप यानि गुप्त रूप से किये गये पापों के प्रायश्चित्त का वर्णन किया गया है। पञ्चम अध्याय में विविध प्रकरण दिये गये हैं यथा भोजन के समय मण्डल का विधान, पाद-प्रक्षालन, भोजन के नियम, सूतक के नियम, शुद्धि-विधान, सूतक दिन निर्णय, कन्या के ऋतुमती होने पर शुद्धि का विधान, जन्म के दिन ग्रहण होने पर पूजा विधान-विधि आदि व अन्त में दान से स्वर्ग प्राप्ति का वर्णन किया है। इस प्रकार कुल पाँच अध्यायों में कुल १४४ श्लोक हैं।

(अ) अत्रि संहिता— अत्रि स्मृति व अत्रि संहिता दो धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ हैं। अत्रि स्मृति अध्यायों में विभक्त है, किन्तु अत्रि संहिता में सङ्कलित ३९५ श्लोक हैं। संहिता के सुनने के माहात्म्य से प्रारम्भ इस संहिता में गुरु के अपमान पर कुकर योनि प्राप्त होना बतलाया है। इसी प्रकार शास्त्र के अपमान से पशु योनि में जाने की बात कही है। इसके अलावा इस संहिता में राजा के पञ्च यज्ञ बताये हैं— दुष्ट को दण्ड, सज्जन पूजा, न्याय से कोष वृद्धि, निष्पक्ष न्याय, राष्ट्रवृद्धि। शौच लक्षण, दान माहात्म्य, इष्टापूर्ति के लक्षण, गया श्राद्ध व उसका माहात्म्य, कृच्छ्र, चान्द्रायण, सान्तपन आदि व्रतों का विधान, स्त्री को जप व व्रत का निषेध, केवल पति को ही गुरु मानना, लोहपात्र में भोजन निषेध, भिक्षुक की परिभाषा, विभिन्न प्रकार के पापों व उनके प्रायश्चित्त का वर्णन, विभिन्न प्रकार के कृच्छ्र व्रत, श्राद्ध में भोजन शुद्धि वर्णन, स्नान, भोजन आदि में मौन विधान, गोदान, विद्यादान का महत्त्व व दानपात्र का वर्णन, श्राद्ध में भोजन कराने योग्य ब्राह्मणों का वर्णन, श्राद्ध का माहात्म्य व न करने से पाप, विद्वान् होने पर भी पतित ब्राह्मण की पूजा नहीं की जाती, दीपक की छाया, बकरी की धूलि की शुद्धि, व अन्त में अत्रि संहिता के श्रवण का माहात्म्य बताया गया है।

Scanned with CamScanner

वृद्धात्रेय स्मृति— श्रीजीवानन्द -विद्यासागर-भट्टाचार्य के द्वारा प्रकाशित स्मृतिसंग्रह नामक ग्रन्थ जो कि कलकत्ता से ई. १८७६ में प्रकाशित हुआ था। उसमें अत्रि स्मृति, लघुअत्रि संहिता व वृद्धात्रेय संहिता के नाम से अत्रि स्मृति के तीन संहिताएँ प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार का एक प्रकाशन शकाब्द १८०५ का मुम्बई से भी प्रकाशित है इसमें ये तीनों संहिताएँ प्रकाशित हैं। इस वृद्धात्रेय स्मृति में कुल पाँच अध्यायों में लगभग १३५ श्लोक हैं। इसके चतुर्थ अध्याय में श्लोक व सूत्र दोनों ही प्राप्त होते हैं। इसका चतुर्थ अध्याय एवं अत्रिस्मृति का चतुर्थ अध्याय लगभग समान है। इसके प्रथम अध्याय में मुनियों के द्वारा दान, धर्म व आचारादि नियमों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे जाने पर अत्रि ऋषि ने पाँच अध्यायों व १३५ श्लोकों व कुछ सूत्रों में इस स्मृति को उपनिबद्ध किया है। अत: सभी पापों की शुद्धि के रूप प्राणायाम को ही श्रेष्ठ एवं शुद्धिदायक बताया है। इसमें प्राणायाम से किस प्रकार शरीर का शोधन होता है वह स्पष्ट किया है। प्राणायाम के द्वारा उपपातकों का प्रायश्चित किया जाना भी बताया है। साथ ही प्राणायाम के समय गायत्री व व्याहृतियों का सम्पुटादि पर विस्तार से विवेचन किया है। द्वितीय अध्याय में प्राणायाम के साथ ही विभिन्न वैदिक सूक्तों यानि कूष्माण्ड, पवमान, आदि सूक्तों के पाठ से सुरापानादि जैसे महापातकों का भी प्रायश्चित सम्भव बताया है। इन सूक्तों के साथ ही पुरुष सूक्त के जप एव हवन करने का विधान भी एवं तदनुसार पाप से प्रायश्चित को विवेचित किया है। विभिन्न प्रकार के जपों एवं उन जपों के विधान को भी यहाँ व्याख्यायित किया है। तृतीय अध्याय में वेद की महिमा का बखान किया है। तथा वेद के बल से पापों को नष्ट करने का विधान बताया है। इस प्रकार इस अध्याय में वेद के साथ ही पुराणों की महिमा का भी बखान किया गया है। साथ आहारशुद्धि, भक्ष्याभक्ष्य विवेक जप व होमादि का विवरण इस अध्याय में प्राप्त होता है। साथ ही इस अध्याय में वेद के कई सूक्तों यथा गरुड़, गौसूक्त, वाक्सूक्त, अश्वसूक्त, इन्द्रसूक्त आदि के श्रवण का माहात्म्य बताया है। इन सूक्तों का जप एवं यज्ञ का विधान बताया है। चतुर्थ अध्याय में प्रायश्चित के रहस्यों को बताया गया है। पञ्चम् अध्याय में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र के लिये बलिवैश्वदेव हेतु प्रयोग को बताया है। बलिवैश्वदेव के समय जल के मण्डल बनाना अथवा जल के छिड़काव करने से पिशाच दूर होते हैं एवं देवता उन बलियों को ग्रहण करते हैं। इस अध्याय में विभिन्न पापों के प्रकार बताते हुये मनु को नामोल्लेख किया है। यह अध्याय ही इस स्मृति का सर्वाधिक विस्तार वाला अध्याय है।

(५) विष्णु स्मृति—

विष्णु स्मति दो प्राप्त होती हैं। एक लघु काय है तथा उसमें शौनक ऋषि के प्रति ऋषियों का प्रश्न है कि अन्तकाल में ध्यान करने से मोक्ष होता है। इसके साथ ही युधिष्ठिर व भीष्म पितामह का संवाद है। भीष्म के प्रश्न पर विष्णु भगवान् का उत्तर व नारायण के नाम का माहात्म्य व द्वादशाक्षर मन्त्र का माहात्म्य। पुराणों में यद्यपि अनुष्टुप छन्दों में रचना है तथापि उनमें सृष्टि उत्पत्ति का प्राचीन इतिहास भी प्रकट होता है। वही रचना इस स्मृति के प्रारम्भ में हमें दिखाई देती है।

विष्णु (द्वितीय) स्मृति विशालकाय है इसमें १०० अध्याय है। तथा इस स्मृति में सभी विषयों पर विस्तृत चर्चा प्राप्त होती है। इस स्मृति की रचना स्मृतियों, पुराणों व सूत्र ग्रन्थों तीनों ही प्रक्रिया से हुई है। इसमें ब्रह्मा की उत्पत्ति व ब्रह्मा से सृष्टि की रचना, वराह द्वारा पृथ्वी का उद्धार तथा पृथ्वी द्वारा विष्णु की स्तुति। इसके ये प्रारम्भ के अध्याया पुराणों की भाँति लिखे गये हैं। इसके के कारण कई इतिहासकारों को ये अनावश्यक भ्रान्ति होगी कि ये स्मृति प्राचीन नहीं है। किन्तु ये भ्रान्ति ही है वास्तव में ये विष्णु नाम से भगवान् के द्वारा स्वयं निर्मित है। वर्तमान इतिहासकारों का यही प्रयास है कि येन केन प्रकारेण भारतीय धर्मदर्शन को मिथ्या बताया जाय।

Scanned with CamScanner

सवर्णाश्रम वृत्तिधर्म वर्णन के अन्तर्गत वर्णाश्रम की रचना, उनके मन्त्रों द्वारा श्मशान तक की क्रिया, वृत्ति, जाति पर विचार किया गया है। तथैव राजधर्म वर्णन के अन्तर्गत वर्णन किया है ब्राह्मणों से कर नहीं लेना चाहिये। प्रजा के सुख से सुखी व दु:ख से दु:खी रहने से राजा को स्वर्ग की प्राप्ति, महापातक और उनके दण्ड का वर्णन, पापियों के दण्ड का वर्णन, अन्य योनियों का वर्णन, कूट साक्षियों का वर्णन, चारे आदि का वर्णन व उनके सन्दर्भ में दण्ड विधान। ऋणदान वर्णन के अन्तर्गत ऋणी धनी का व्यवहार और उसकी व्यवस्था का वर्णन, स्वर्ण की द्विगुण की वृद्धि, अन्न की त्रिगुण की वृद्धि इनके निर्णय शास्त्र साक्षी। सम्पत्ति लेने वाले को ऋणदान आवश्यक। इस प्रकार नारद स्मृति में विधि व्यवहार व न्याय सम्बन्धी जिन विभिन्न विषयों का विवेचन प्राप्त होता है उसी प्रकार यहाँ भी व्यापक रूप से उन विषयों को प्रस्तुत किया गया है। विधि व्यवहार विषय पर इस स्मृति में कुल १३ अध्यायों में चर्चा की गई है। पुत्र के प्रकार व पिता की सम्पत्ति में उनके अधिकार की चर्चा की गई है। स्त्री का महत्त्व बताते हुये कहते हैं कि यदि पति अपनी सम्पत्ति का विभाजन स्वयं करता है तो उसमें उसकी पत्नी का भी अधिकार है। कई पत्नियों से प्राप्त पुत्रों में किसे शवस्पृश करने व और्ध्वदैहिक कर्म करने का अधिकार कहा है किसे नहीं इसकी भी व्यापक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। कालगणना, अशौच व श्राद्धादि का वर्णन, अन्नादि विभिन्न द्रव्यों की शुद्धि का वर्णन। विवाह व स्त्रीधर्म का वर्णन, अनेक पत्नियों के होने पर धर्मपत्नी किसे माना जाय इसका निर्णय। ब्रह्मचारियों को गुरुकुल में कैसे रहना चाहिये, आचार्य की कर्त्तव्यता, वेद अध्ययन व अनध्ययन काल का वर्णन, माता-पिता गुरु सुश्रूषा का विधान किया गया है। यहाँ स्मृतियों व सूत्र ग्रन्थों के मिले-जुले प्रकार से स्मृति की रचना की गई है, क्योंकि इनमें कई नियम श्लोकों के रूप में तो कहीं ब्रह्मचारियों व आचार्य आदि के लिये दिये गये नियम सूत्र रूप में है।

आचार्य नन्दपण्डित ने इस स्मृति पर वैजयन्ती नामक टीका भी लिखी है। यजुर्वेद की कठ शाखा से सम्बन्धित है। इसमें मनुस्मृति, श्रीमद्भगवद्गीता, गरुडपुराण के अनेकानेक वचन उद्धृत किये गये है। मनुस्मृति के मेधातिथि-भाष्य, याज्ञवल्क्य की मिताक्षरा टीका, अपरार्क तथा स्मृतिचन्द्रिका में इस स्मृति को विशेष रूप से उपन्यस्त किया गया है। इसके प्रारम्भ में वराहावतार का इतिहास प्राप्त होता है।

(अ) लघुविष्णस्मृति— विष्णुस्मृति का एक अन्य प्रकार भी प्राप्त होता है लघुविष्णुस्मृति। अपने नाम के अनुरूप इसका कलेवर तुलनात्मक रूप सङ्क्षिप्त है। इसमें केवल पाँच अध्याय एवं ११५ श्लोक है। इसके प्रारम्भ में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि सत्ययुग के बीत जाने पर त्रेतायुग में कलाप ग्राम में निवास करने वाले मुनियों ने श्रुति व स्मृतिशास्त्र के जानने वाले श्रेष्ठ द्विजों ने विष्णु जी से वर्णाश्रम धर्म के विषय में जिज्ञासा की। इस पर उन्हें जो धर्मोपदेश प्राप्त हुआ उनका ही संग्रह लघुविष्णुस्मृति के नाम से विहित है। इसमें मुख्य रूप से चारों वर्णों के धर्म, ब्रह्मचारी के नियम, गृहस्थधर्म, वानप्रस्थधर्म तथा सन्यासधर्म का वर्णन है।

(६) व्यास स्मृति—

महर्षि वेदव्यास प्रणीत व्यास्मृति का स्मृतिवाङ्मय में पुराणवत् ही आदर है। यथा पुराणों में हम समाधिपाद की भाषा को जानते हैं। निबन्धग्रन्थों में व्यास स्मृति के बहुश: उद्धरण प्रत्येक स्मृति-निबन्ध-ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। वर्तमान में उपलब्ध व्यास स्मृति में चार अध्याय तथा २५० श्लोक प्राप्त होते हैं। इसके प्रथम अध्याय में वर्ण विभाग, अनुलोम प्रतिलोमों विवाह के कारण उत्पन्न की भिन्न-भिन्न जाति की सञ्ज्ञा उनके कर्म, गर्भाधानादि संस्कार, यज्ञोपवीत धारण काल, जाति, परत्व एवं

Scanned with CamScanner

ब्रह्मचारी के व्रतों का उपदेश दिया गया है। द्वितीय अध्याय में विवाह विधि का वर्णन सवर्ण कन्या के साथ विवाह करे अन्य के साथ नहीं। पुरुष विवाह करने पर ही पूर्ण शरीरधारी होता है। स्त्री के कर्तव्य यथा—

पत्युपूर्व समुत्थाय देहशुद्धिं विधाय च।
उत्थाप्य शयनाद्यानि कृत्वा वेश्मविशोधनम्।।[१५]

पति के जागने से पूर्व शयन से उठकर घर की शुद्धि, वस्त्रादिकों को यथा स्थान में रखे। पुरुष का कर्त्तव्य स्त्री के प्रति गच्छेद्युग्मासु रात्रिषु इत्यादि। यह भारतीय संस्कृति के नियम प्रत्येक गृहस्थ को आदरणीय एवं आचरणीय है। तृतीय अध्याय में गृहस्थी के नित्य नैमित्ति काम्य कर्मों का निर्देश तथा उषाकाल में जागकर कर्म में प्रवृत्त होने की विधि। सन्ध्या कर्म, पितृतर्पण, वेदाध्ययन, धर्मशास्त्र इतिहास को प्रात:काल पढ़ने का विधान। पाक–यज्ञ–विधान, दान का महत्त्व, गुणवान् को श्राद्ध में भोजन कराना, वेदादि शास्त्र के ज्ञाता को ही ब्राह्मणत्व में हेतु बताया है। एक पंक्ति में सबको समान भोजन देना। चतुर्थ अध्याय में सांस्कृतिक जीवनी का वर्णन, माता–पिता ही परम तीर्थ हैं। दान के विषय में कहा है—

यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनां धनम्।
अन्ये मृतस्य क्रीड़न्ति दारैरपि धनैरपि।।[१६]

दान देना तथा धन का भोग करना यही अपना धन समझो। धन होने पर दाता भोक्ता बनो यह धार्मिक नैतिक अनुशासन बताया है। पढ़े हुये पुरुष का जीवन सफल व अनपढ़ का जीवन निरर्थक है। आचार्य आदि की परिभाषा भी इसमें दी गई है।

(अ) लघुव्यास स्मृति—महर्षि वेदव्यास के नाम से एक लघुव्यास स्मृति भी प्राप्त होती है, जो दो अध्यायें में लिखी गई है। इसमें कुल १२३ श्लोक हैं। इसमें छ: कर्मों के सम्पादन की नित्य आवश्यकता बतलाई है। प्रात:काल ब्राह्म मुहूर्त में स्नान करना चाहिये, स्नान के पूर्व जिन वृक्षों के दतौन करने हैं उनका नाम तथा सूर्योपस्थान, सन्ध्या प्रतिदिन करने का आदेश, बिना सन्ध्या किये जो कुछ पूजा दान करे वह निष्फल कहा है। नित्यकर्म का विधान देवयज्ञ, पितृयज्ञादि पञ्च महायज्ञ, जप करने की विधि, तथा जपमाला का स्वरूप व पदार्थ बताया गया है। तीर्थस्नान एवं अघमर्षण सूक्त का माहात्म्य। शिवपूजन मन्त्र, वैश्वदेव कर्म भूतबलि, अतिथि का पूजन, भोजन करने का नियम, काल, ग्रहण काल में भोजन करने का निषेध, शयन का नियम, शय्या का स्वरूप तथा शिर की दिशा इत्यादि मानवाचार का विशदिकरण किया गया है।

(७) आपस्तम्ब स्मृति—

महर्षि आपस्तम्ब अत्यन्त ही प्राचीन वैदिक ऋषियों में उल्लिखित हैं। ये महान् योगी, वेद–वेदान्तादि शास्त्रों के मर्मज्ञ और दयावान् प्रकृति के थे। ये कृष्णयजुर्वेद के आचार्य हैं गोत्र निर्देशक पाणि के विदादि गण–सूत्र में इनका नाम परिगृहीत हुआ है। इनके गोत्रवाले दक्षिण में वर्तमान में भी हैं। आपस्तम्ब के नाम से आपस्तम्बश्रौतसूत्र, आपस्तम्बधर्मसूत्र, आपस्तम्बगृह्यसूत्र, आपस्तम्बयज्ञपरिभाषासूत्र, आपस्तम्बधर्मसूत्र तथा आपस्तम्बस्मृति प्राप्त होती है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र धर्मशास्त्र का मुख्य ग्रन्थ है। आचार–विचार तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्य के निर्देशक शास्त्र के रूप में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह पूरा ग्रन्थ दो प्रश्नों में विभाजित है। प्रथम प्रश्न में एकादश पटल व ३२ कण्डिकाएँ हैं। द्वितीय प्रश्न में एकदश पटल व २९ कण्डिकाएँ हैं।

---

१५ व्यासस्मृति २.१९
१६ व्यासस्मृति ४.

Scanned with CamScanner

इन्हीं के नाम से आपस्तम्ब स्मृति भी है। जो कि दस अध्यायों में व २०० श्लोकों में उपनिबद्ध है। महर्षि आपस्तम्ब ने अपनी स्मृति के प्रारम्भ में गृहस्थ के लिये गो-पालन को आवश्यक कर्म बताया है एवं गोचिकित्सा को महान् पुण्य बताया है। इस प्रकार प्रथम अध्याय में गोसेवा, गोचिकित्सा आदि का सङ्क्षेपत: निरूपण करते हुये अगले अध्यायों में शुद्धि-अशुद्धि का विवेचन, स्पर्शास्पर्श-खाद्याखद्यविमर्श, उच्छिष्ठ भोजन का प्रायश्चित्त, नीला वस्त्र धारण करने का निषेध, रजस्वला आदि के स्पर्शास्पर्श की मीमांसा, दूषित वस्तुओं की शुद्धि का विधान तथा अपेय पान आदि का वर्णन किया है। अन्त में दशम अध्याय में अध्यात्मज्ञान का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है।

(८) वसिष्ठस्मृति—

महर्षि वसिष्ठ के नाम से धर्मसूत्र एवं स्मृति दोनों ही प्राप्त होते हैं। दोनों में विषय वस्तु लगभग समान है। वसिष्ठ स्मृति में ३० अध्याय एवं ८५० श्लोक प्राप्त होते हैं। यह स्मृति मुख्यत: वैष्णव परम्परा एवं वैष्णवभक्ति दर्शन का विवेचन करती है। वैष्णवों के सदाचार, नित्यानुष्ठान, पूजा, इज्या, चर्या आदि का प्रतिपादन करती है। इसके आरम्भ में ही निर्देश हुआ है कि व्यासादि ऋषि-महर्षियों ने महर्षि वसिष्ठजी से वैष्णवों के आचार, भक्ष्याभक्ष्य वृत्ति आदि के विषय में प्रश्न किया तब उन प्रश्नों का महर्षि वसिष्ठ ने जो उत्तर दिया वह 'वसिष्ठ स्मृति' के रूप में है। महर्षि वसिष्ठ ने वैष्णवों के कार्यों को बताया है। उनकी नित्यपूजा, अलङ्करण, आराधना विधि आदि को व्याख्यायित किया है।

इसके द्वितीय अध्याय में वैष्णवों के जातकर्म तथा नामकरण संस्कार की प्रक्रिया वर्णित है। तृतीय अध्याय में वैष्णव बालकों के निष्क्रमण तथा अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन, संस्कार की विधि पारम्परिक रूप में वर्णित है। निष्क्रमण संस्कार का समय चार मास बताया है। चतुर्थ अध्याय में विवाह विधि को विस्तारश: समझाया है। पञ्चम अध्याय में स्त्री-धर्म, पतिव्रता स्त्रियों के कर्त्तव्यों का वर्णन है। षष्ठ अध्याय में विस्तार से वैष्णवों के नित्य-नैमित्तिक कृत्यों का वर्णन हुआ है। सप्तम अध्याय में शालग्रामशिला की महिमा तथा उसे भगवान् हरि का विग्रह बताया गया है। देवालय में विष्णुप्रतिमा की स्थापना, प्राणप्रतिष्ठा तथा पुन: पूजा इत्यादि की विधि भी विस्तार से निरूपित है।

स्त्रियों के लिये यह स्मृति अत्यन्त ही प्रमाणिक है। इस स्मृति में स्पष्ट लिखा है कि यदि किसी स्त्री पर बलात् अत्याचार हो तो भी वह त्याज्य नहीं है। क्योंकि स्त्री का त्याग करना स्मृतिशास्त्र के विरुद्ध है। यह समाजोपयोगी तथ्य है जिसे हमें ग्रहण करना चाहिये—

> **स्वयं विप्रतिपन्ना वा यदिवा विप्रवासिता।**
> **बलात्कारोपभुक्ता वा चोरहस्तगताऽपिवा।।**
> **न त्याज्या दूषितानारी नास्यास्त्यागो विधीयते।**
> **पुष्पकालमुपासीत ऋतुकालेन शुध्यति।।**[१७]

इसके अलावा इस स्मृति में बताया है कि शतरुद्रिय, अथर्वशिर, त्रिसुपर्ण, गोसूक्त और अश्वसूक्त का पाठ करने से मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है। इसके अन्तिम अध्याय में प्राणाग्निहोत्र की विधि का वर्णन किया है।

(९) वसिष्ठ स्मृति (द्वितीय)—

वशिष्ट स्मृति के नाम से एक अन्य ग्रन्थ भी प्राप्त होता है। इसमें वैष्णवों के आचारा विचार एवं कृत्यों को समाहित किया

---

१७ वसिष्ठ स्मृति २८.

Scanned with CamScanner

गया है। इसमें कुल ७ अध्यायों में कुल ११३९ श्लोक हैं। अतः यह आकार में तुलनात्मक रूप से बड़ी है। इसमें सारा विवरण वैष्णव परम्परा के अनुरूप दिया गया है। वैष्णवों के आचार-विचार उनकी वृत्ति, वैष्णवों के आचार और शङ्ख चक्र धारण करने की विधि, वैष्णव सम्प्रदायों के अनुसार नामकरण की विधि, वैष्णव धर्म के अनुसार बालक को घर से बाहर लाने एवं अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म उपनयनादि संस्कारों का वर्णन, विद्याध्ययन से स्नातक होकर वैष्णवधर्मानुसार नैष्ठिक आदि ब्रह्मचारी व आठ प्रकार के विवाह का विधि वर्णन गर्भाधान व सीमन्तोन्नयन, पुंसवन आदि संस्कार, पतिव्रता स्त्री का आचरण, वैष्णव धर्म के अनुसार नित्यनैमित्तिक विधि का वर्णन, भगवान् के पूजन का विधान साथ ही उत्सव मनाने का माहात्म्य और विधि, वैष्णव धर्म के अनुसार पितृयज्ञ श्राद्ध तथा आशौच व प्रायश्चित्त का वर्णन, विष्णु स्थापन आदि की विधि को वर्णित किया है। वसिष्ठ स्मृति की तुलना में इसमें लगभग २५० श्लोक अधिक हैं। यह वैष्णव वसिष्ठ स्मृति कही जा सकती है।

(१०) पाराशर धर्मशास्त्र—

पराशर स्मृति के प्रणेता महर्षि पराशर भगवान् वेद व्यास के पिता हैं तथा महर्षि वसिष्ठ के पौत्र है। महात्मा शक्ति के पुत्र। इस प्रकार देखा जाय तो इनकी वंश परम्परा इस प्रकार है— वसिष्ठ के पुत्र शक्ति, शक्ति के पुत्र पराशर, पराशर के पुत्र व्यास जी। 'पराशर' इस शब्द का अर्थ है कि जो दर्शन-स्मरण करने मात्र से समस्त पाप-ताप को छिन्न-भिन्न कर दे वे ही 'पराशर' कहलाते हैं—**पराशृणोति पापानीति पराशरः।**

महर्षि पराशर ने एक धर्मसंहिता का भी निर्माण किया, जो पराशरस्मृति के नाम से अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसका स्मृतियों में विशेष स्थान है। वर्तमान में उपलब्ध पराशर स्मृति में १२ अध्याय हैं। महर्षि पराशर युगद्रष्टा महात्मा थे। उन्होंने सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, तथा कलियुग के धर्म-व्यवस्था को समझकर प्राणियों के लिये सहजसाध्य रूप में धर्म की मर्यादा को विवेचित किया है। उनका कथन है कि कलियुग में लोगों के लिये सत्ययुगादि के धर्मों का अनुष्ठान दुष्कर हो जायेगा। अतः इस कलियुम में लोक अपने शक्ति के अनुसार जिस धर्मोचरण का पालन कर सकें। उस धर्म को ही इस स्मृति में बताया गया है। स्मृति के प्रारम्भ में उपक्रम में बतलाया गया है कि एक बार महात्मा व्यास जी हिमालय पर्वत पर बैठे थे तभी कलियुग पर सुखपूर्वक किये जाने वाले धर्मों पर चर्चा हुई तब उन्होंने अपने पिता के वचनों को उद्धृत किया यही वचन पराशर स्मृति के रूप मे निबद्ध है।

पराशर से यही प्रश्न व्यास जी ने किया तो पराशर जी ने उत्तर दिया कि प्रत्येक कल्प में प्रलय होने पर ब्रह्मा, विष्णु, तथा महेश ये तीनो देव विद्यमान रहते हैं और वे ही सदा से श्रुति, स्मृति तथा सदाचार का निर्णय करते आये हैं। वेद का कोई कर्त्ता नहीं है। कल्प के आदि में ब्रह्माजी पूर्व के समान वेद का स्मरण कर उसे प्रकाशित करते हैं एवं जो-जो मनु, कल्प तथा मन्वन्तर में होते हैं वे भी उसी प्रकार पूर्व के धर्मों का स्मरण करते हैं और लोक में धर्म का प्रणयन करते हैं। शक्ति की वृद्धि तथा ह्रास युगानुरूप होता है। कलियुग में दान की महिमा है—

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमित्यूचुर्दानमेकं कलौ युगे।।[1]

इस प्रकार महर्षि पराशर ने अपनी स्मृति को युगानुरूप बतलाया है और सभी मानवों से यह अपेक्षा की है कि वह अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार धर्म का ही सेवन करे अधर्म का नहीं। सदाचार कर पालन करे कदाचार का नहीं।

Scanned with CamScanner

और पुराण पाठ आदि भगवान् पूजन के कीर्तन के अनेक विधान बताये हैं। भगवत यात्रोत्सववर्णन, वैष्णवेष्टि, श्राद्ध, आदि वैष्णव परम्परा के कृत्यों को विस्तारशः विवेचित किया है। प्रत्येक दशा एवं उत्सव से सम्बन्धि वैदिकसूक्तों का विधान भी प्राप्त होता है। मूर्त्तिपूजा के दैनिक नियमों को मन्त्र सहित बताया गया है। महापातकादि प्रायश्चित्त वर्णन, महापाप के लिये अग्नि में जलने के अलावा कोई प्रायश्चित्त नहीं बताया गया है। इस प्रकार बृहत्हारीत स्मृति में स्मृति-प्रतिपाद्य आचार व्यवहार प्रायश्चित्त के समुचित निर्णय के अतिरिक्त वैष्णवाचार, वैष्णवोपासना, विष्णु इष्टी, विष्णुपूजन, सोग सावरण वैष्णवपूजा उत्सव रथयात्रा एकादश्यादि, व्रतोद्यापन, मण्डप-रचना आदि का सुचारु विधान निरूपण किया है।

(४९) गौतम स्मृति—

गौतम स्मृति के नाम से दो स्मृतियाँ प्राप्त होती हैं— (अ) गौतम स्मृति एवं (ब) वृद्धगौतम स्मृति।

(अ) गौतम स्मृति— आचारवर्णन से प्रारम्भ होती है यह स्मृति इसमें कुल २९ अध्याय हैं, यह गद्यात्मक शैली में लिखी गई है, प्रत्येक अध्यायों में गद्य अथवा सूत्र दिये गये हैं। उपनयन संस्कार का समय व उसका विधान, ब्रह्मचारी के नित्य नैमित्तिक कर्मों का वर्णन व ब्रह्मचारी के नियम, नैष्ठिक ब्रह्मचारी के व्रत, नियम व तपस्या, विवाह प्रकरण में आठ प्रकार के विवाह व उसके लक्षण ४ ब्राह्म, आर्ष, प्राजापत्य और दैव ये धार्मिक विवाह हैं। इन धार्मिक विवाहों से उत्पन्न सन्तान अपने पूर्वजों का उपकार करती है। गृहस्थाश्रम में गृहस्थ के कर्त्तव्य, आपद्धर्म, संस्कार वर्णन, जिसका संस्कार होता है उसमें सभी उदात्तगुणों का आधान होने से ब्राह्मी तनु के प्राप्ति का अधिकार आ जाता है। कर्त्तव्याकर्त्तव्य वर्णन, स्नातक गृहस्थ-जीवन का प्रवेशार्थी है वह विधि विहित विद्या का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन कर भविष्य के गुरुतर उत्तरदायित्व को वहन कर आदर्श रूप से कर्त्तव्य पालन करता हुआ अपना, समाज का, राष्ट्र का हित-सम्पादन करता है— स्नातक की आदर्श दिनचर्या उसके नियम और आचार का वर्णन है। **सत्यधर्मा आर्यवृत्त शिष्टाध्यापक शौचशिष्टः श्रुतिनिरतः स्यान्नित्यमहिंस्रो मृदुदृढकारी दमदानशील एवमाचारो मातापितरौ पूर्वापरान्सम्बन्धान् दुरितेभ्यो मोक्षयिष्यन् स्नातकः शश्वद्ब्रह्मलोकान्नच्यवते।** ब्राह्मणक्षत्रिय वर्णों की पृथक्-पृथक् आजीविका वृत्ति, राजधर्म न्यायपूर्वक प्रजापालन राजा का परम धर्म है। भिन्न-भिन्न पापकर्म के दण्ड विधि का निरूपण, साक्षियों का वर्णन, आशौच वर्णन, श्राद्ध निर्णय, वेदादि शास्त्रों के अनध्याय काल वर्णन, भक्ष्य एवं अभक्ष्य पदार्थों का निरूपण, निषिद्ध वस्तुओं के व्यवहार करने में प्रायश्चित्त का वर्णन, विभिन्न का कर्मफल का विपाक, सब प्रकार के पातकों में शान्ति कर्म की आवश्यकता, निषिद्धकर्म के जन्मान्तर में विपाक वर्णन, महापातक एवं उसके प्रायश्चित्त का विधान, रहस्य प्रायश्चित्त, चान्द्रायण, कृच्छ्रव्रतविधि, अतिकृच्छ्र व्रत की विधि का वर्णन व दाय भाग को विवेचित किया गया है।

(ब) वृद्ध गौतमस्मृति— वृद्धगौतम स्मृति में कुल २२ अध्यायों में १४३२ श्लोक हैं। यह स्मृति युधिष्ठिर ने वैशम्पायन से वैष्णव धर्म की जानकारी के लिये प्रश्न किये तब वैशम्पायन ने उत्तर में वैष्णव धर्म का माहात्म्य व उसका सविस्तार वर्णन किया, धर्मस्वरूप, धर्मप्रशंसा, दान प्रकरण, ज्ञानी को दान देने की प्रशस्ति गाई है, ब्राह्मणों के लक्षण चारों वर्णों में ब्राह्मण किस प्रकार अन्यों को तारने वाला है उसका विवेचन, मनुष्यलोक व यमलोक का प्रमाण मनुष्य किस प्रकार यमलोक से तर जाता है, प्रेतलोक व यमलोक की गति का वर्णन, जीव की गति, दानविशेष से यमलोक से मुक्ति, सम्पूर्ण प्रकार के दानों का फल, अनेक प्रकार के दान यथा मन्दिरों में भोजन, कीर्तन, प्याऊ लगाना, वृक्षारोपण आदि का कार्य, पञ्चमहायज्ञ करने की आवश्यकता, स्नानविधि सन्ध्या, देव, पितृतर्पण का कार्य, विभिन्न प्रकार के पुष्पों का वर्णन व वर्जित पुष्पों का निषेध,

Scanned with CamScanner

देवताओं की पूजन की विधि व मोतियों के पूजन का विधान, श्राद्ध का समय एवं पूजा करने के योग्य ब्राह्मण, दान का समय व पात्र, ब्रह्मघाती के लक्षण, विद्यादान की महिमा, विस्मय से तप, निन्दास्तुति से आयु व ढिंढोरा पीटने से दान क्षीण होता है। धर्म का सार, चान्द्रायण विधि वर्णन, कार्तिक से लेकर आश्विन तक प्रतिमास का दान व पूजा का वर्णन, जो दिन में एक बार भोजन करता है उसका माहात्म्य, उपवास का माहात्म्य, प्रत्येक मास में भिन्न-भिन्न उपवास करने का माहात्म्य, कृष्णद्वादशी में भगवत् पूजन का माहात्म्य, विषुवत् संक्रान्ति व ग्रहण काल में दान की विधि व माहात्म्य, गायत्री जप, पीपल पूजन, तीर्थ लक्षण, सम्पूर्ण पापों के नाश करनेवाला प्रायश्चित्त का वर्णन, पवित्र ब्राह्मण का लक्षण, शूद्रों के वर्ण व धर्म का वर्णन। इस प्रकार इसमें विस्तार से इन विषयों को विवेचित किया गया है।

(५०) अरुण स्मृति—

अरुण स्मृति लघुकाय स्मृति है इसमें कुल १४८ श्लोकों में प्रतिग्रह का वर्णन दिया गया है। प्रतिग्रह के विषय में भगवान् सूर्य के रथ में आगे विराजमान्, विनितानन्दन अरुण के द्वारा सूर्य से प्रतिग्रह के सन्दर्भ में प्रश्न पूछे जाने पर भगवान् सूर्य द्वारा जो उत्तर दिया गया वही अरुण स्मृति है। प्रतिग्रह से ब्राह्मण का तेज नष्ट होता है— **प्रतिग्रहेण विप्राणां ब्राह्मंतेज: प्रशाम्यति।** इसमें १४० श्लोक प्रतिग्रह सम्बन्धी प्रायश्चित्त पर लिखे गये हैं।

(५१) बुध स्मृति—

बुध स्मृति अत्यन्त ही सूक्ष्म स्मृति में है। यह पूरी स्मृति गद्यात्मक है। छोटे छोटे वाक्य सूत्र रूप में मिलते हैं। चारों वर्णों के धर्मों का कथन इस स्मृति में किया गया है।

(५२) विश्वेश्वर स्मृति—

इस विश्वेश्वर की रचना पं. विश्वेश्वर नाथ रेऊ जी ने की है हिन्दी अनुवाद उनकी श्रीमती जी ने किया है। यह स्मृति दो भागों में विभाजित है। पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध विश्वेश्वर स्मृति का उत्तरार्ध एक निबन्ध ग्रन्थ है एवं स्वतन्त्र ग्रन्थ है—आर्यविधानम्। विश्वेश्वर स्मृति के प्रथम भाग में युगधर्म की चर्चा की गई है। अत: प्रश्न यह उठता है मनु-याज्ञवल्क्य-देवल आदि अनेक स्मृतियाँ पूर्व से ही विद्यमान थीं, फिर इस नवीन स्मृति की रचना का क्या प्रयोजन है? इसके उत्तर में रेऊ जी ने कहा है कि आर्यावर्त परिवर्तित हो गया है। विद्युत्, रेडियो, से आर्यावर्त की सीमाएँ बढ़ गई हैं। साथ ही भारत में अनेक जातियाँ आ गई हैं, अनके लोग विदेशों में जाकर बस गये हैं। इस नयी व्यवस्था पर मनुस्मृति के साथ ही अधिक विवेचन आवश्यक है। उसी कारण यह स्मृति लिखी जा रही है। इस स्मृति में मनु स्मृति की ही भाँति बारह अधिकार हैं। रेऊ जी ने पञ्च महायज्ञों का अनुष्ठान प्रत्येक गृहस्थ के लिये अनिवार्य कहा है कि इसे अपने सामर्थ्य के अनुसार करें। इसी प्रकार गृहस्थों के कर्त्तव्य, भक्ष्याभक्ष्य, स्त्रीधर्म, शौचाचार, राजधर्म, पुनर्विवाह, १२ प्रकार के पुत्रों का वर्णन किया है।

इस प्रकार ये प्राप्त स्मृतियाँ युगों प्राचीन हैं इसमें अन्त में आई हुई विश्वेश्वर स्मृति को अन्तिम स्मृति माना जाता है जिसकी रचना जोधपुर में हुई यद्यपि इसके रचनाकार विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने स्वयं भी कहा है कि मनु स्मृति के होते हुये पुन: नवीन स्मृति की रचना का मात्र इतना औचित्य है कि वर्तमान में जो परिवर्तन हुये हैं तथा भारतीय सनातन धर्मावलम्बियों के द्वारा विदेशगमन आवश्यक हो जाता है तो प्रायश्चित सम्बन्धी नियमों में कुछ भिन्नता होनी चाहिये। अत: उसी दृष्टिकोण को रखकर यह ग्रन्थ रचा गया है। इसके अध्ययन से प्रतीत होता है कि यह स्मृति की अपेक्षा एक धर्मशास्त्रीय निबन्धग्रन्थ है।

Scanned with CamScanner

विभिन्न निबन्धकार व भाष्यकार

(१) कृत्य कल्पतरु—

श्री लक्ष्मीधर विरचित यह कृत्यकल्पतरु, कल्पवृक्ष, कृत्यकल्पद्रुम आदि नामों से अभिहित रहा है। यह एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण धर्मशास्त्रीय निबन्ध ग्रन्थ है। इसमें धर्मशास्त्रों से सम्बन्धित सुव्यवस्थित व प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती है। इस ग्रन्थ में अनेकानेक ऐसे श्लोकोद्धरण प्राप्त होते हैं, जिनसे पूर्व में लिखित अन्य धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों की जानकारी प्राप्त होती है। श्री लक्ष्मीधर जी ने इस ग्रन्थ की रचना में अत्यन्त सूक्ष्म गवेषणा के साथ धर्मशात्रीय सूत्रों को एकत्रीकृत किया है।

कृत्य कल्पतरु की रचना बारहवीं शताब्दी विक्रम के मध्य में हुई थी। यह एक अत्यन्त ही ख्याति प्राप्त ग्रन्थ है। धर्मशास्त्री अनिरुद्ध वि.सं. १२१७ (ई. ११६०) व बलालसेन वि.सं. १२१२ (ई ११५५) ने अपने निबन्धों में इस निबन्ध ग्रन्थ का विस्तारश: उल्लेख किया है। कृत्य कल्पतरु का वैशिष्ट्य इसी तथ्य से सर्वाधिक है कि शूलपाणि व रघुनन्द ने अपने निबन्ध ग्रन्थों में कृत्यकल्पतरु को बहुधा उल्लिखित किया है। यही नहीं अठ्ठारहवीं शताब्दी के शूलपाणि के श्राद्धविवेक के टीकाकारा श्रीकृष्ण तर्कालङ्कार ने भी अपनी टीका में इन्हें उल्लिखित किया है। सनातन धर्मशास्त्रों की प्रामाणिक जानकारी हमें इस ग्रन्थ से सरलतया प्राप्त हो जाती है। इस ग्रन्थ की रचना सम्भवत: काशी में हुई थी। चण्डेश्वर, वाचस्पतिमिश्र, तथा वर्द्धमान जिनका समय १५वीं शती विक्रमाब्द रही, ने अपने ग्रन्थों में कृत्यकल्पतरु का उल्लेख किया है। चण्डेश्वर के कृत्यरत्नाकर में स्पष्ट कहा है कि उन्होंने जो कुछ लिखा है वह धार्मिक कार्यों व दायित्वों के लिये प्रमाण है तथा सारा लेखन कृत्यकल्पतरु के समान ही है। चण्डेश्वर ने कृत्यरत्नाकर में २१ बार तथा गृहस्थरत्नाकर में ६ बार कृत्यकल्पतरु को उद्धरण के रूप में ग्रहण किया है। चण्डेश्वर के तृतीय ग्रन्थ विवादरत्नाकर में भी कल्पतरु को ११ बार प्रमाणरूप में उद्धृत किया गया है। इसी प्रकार वाचस्पति मिश्र ने अपने ग्रन्थ तीर्थचिन्तामणि में कहा है कि मेरी रचना तीर्थ रची गई है तथा इसकी रचना से पूर्व मैंने बहुत ही ध्यानपूर्वक कृत्यकल्पतरु, पारिजात, रत्नाकर व इसी प्रकार के अन्य ग्रन्थों को अध्ययन करके भगवान् मधुसूदन के चरणों में झुककर इसका प्रणयन किया है। इस प्रकार उन्होंने बारम्बार कृत्य कल्पतरु को उद्धृत किया है। इसी प्रकार कई निबन्धकारों ने अपने निबन्धों में कृत्यकल्पतरु को उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया है। वर्षक्रियाकौमुदी ने तीन बार, दण्डक्रियाकौमुदी ने एक बार, श्राद्धक्रिया-कौमुदी ने ११ बार शुद्धिकौमुदी में एक बार, रघुनन्दन की रचनाओं में यह २८ बार उद्धृत किया गया है। सरस्वतीविलास के रचयिता धर्मशास्त्री श्री प्रतारुद्र ने अपने व्यवहाराध्याय के दायभाग में कृत्यकल्पतरु को आधार बनाया है। यही नहीं परवर्ती काल के सभी धर्मशास्त्रीय निबन्धकारों ने अपने निबन्धों में श्री लक्ष्मीधर विरचित कृत्यकल्पतरु को प्रमाणिक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है।

Scanned with CamScanner

सर्वप्रथम वि.सं. १९४० (ई. १८८३) में उदयपुर महाराजा के ग्रन्थालय में कृत्यकल्पतरु के द्वादश-काण्ड प्राप्त हुये थे। यद्यपि यह सम्पूर्ण ग्रन्थ कुल चतुर्दश काण्डों में लिखा गया था। इस ग्रन्थ के लेखक श्री लक्ष्मीधर जी कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र देव वि. सं. ११७१-१२१३ (ई. १११४-११५६) के समय में वहाँ सान्धिविग्रहिक मन्त्री के रूप में नियुक्त थे। उनकी कूटनीतिक प्रयासों से ही गोविन्दचन्द्र ने अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की।

वि.सं. १९९१ (ई. १९३४) उदयपुर महाराणा के संग्रहालय से इसकी पाण्डुलिपियाँ प्राप्त की गईं एवं श्री रायबहादुर के.वी. रङ्गास्वामी आयङ्गर ने इस प्राचीन कार्य को सम्पादित करके प्रकाशनार्थ स्वरूप प्रदान किया। इसके ११ काण्ड प्रकाशित किये जो कि इस प्रकार है ब्रह्मचारी काण्ड, गृहस्थकाण्ड, नियतकालकाण्ड, श्राद्धकाण्ड, दानकाण्ड, व्रतकाण्ड, तीर्थविवेचनाकाण्ड, शुद्धिकाण्ड, राजधर्मकाण्ड, व्यवहारकाण्ड व मोक्षकाण्ड ये कुल मिलाकर १४ भागों में प्रकाशित किया गया।

यद्यपि कल्पतरु मिताक्षरा से बहुत बड़ा है, किन्तु विद्वता, सम्पादन एवं व्याख्या में उसकी बराबरी नहीं कर सकता। इसमें आचार-सम्बन्धी सूत्रों के अतिरिक्त व्यवहार विषयक कई काण्ड थे। राजधर्म पर लक्ष्मीधर ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। कल्पतरु में विशेषत: स्मृतिकारों, महाकाव्यों एवं पुराणों के उद्धरणों के साथ ही व्यवहार काण्ड में मेधातिथि, शङ्खलिखित, के भाष्य, प्रकाश, विज्ञानेश्वर, हलायुध एवं कामधेनु नामक निबन्धों के उद्धरण भी हैं। हरिनाथ ने अपने स्मृतिसार में और श्रीदत्त ने अपने आचारदर्श में कल्पतरु को बहुधा उद्धृत किया है। दक्षिण एवं पश्चिम भारत में भी लक्ष्मीधर का प्रभूत प्रभाव था। हेमाद्रि एवं सरस्वती विलास ने आदर के साथ कल्पतरु का उल्लेख किया है, यहाँ तक कि लक्ष्मीधर को उन्होंने भगवान् की उपाधि दी है।[1]

(२) भर्तृयज्ञ—

मेधातिथि ने मनुस्मृति पर लिखे अपने भाष्य में अध्याय आठ के तृतीय श्लोक में लिखा है — **व्याख्यानान्तराणि भर्तृयज्ञेन सम्यक् कृतानि तत एवावगन्तव्यानि।**[2] इस प्रकार मनुस्मृति के भाष्य में इनका नामोल्लेख प्राप्त होता है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इस श्लोक में जो कुछ मेधातिथि देना चाहते हैं वह भर्तृयज्ञ के द्वारा की गई व्याख्या में अधिक स्पष्ट है एवं वहाँ देखा जाना उचित है। इससे यह प्रमाणित होता है कि ये भी एक टीकाकार थे एवं पी. वी काणे महोदय ने इन्हें असहाय के समकालीन ही माना है। भर्तृयज्ञ का नामोल्लेख भी हमें विभिन्न धर्मशास्त्रीय निबन्धों में एवं अन्य परवर्तीकालीन टीकाओं में प्राप्त होता है। इसी के आधार पर इनको जाना जा सकता है। प्रकट में इनके द्वारा लिखित कोई ग्रन्थ अथवा टीका प्राप्त नहीं होती।

(३) स्मृति चन्द्रिका—

'स्मृतिचन्द्रिका' धर्मशास्त्र का एक प्राचीन व अत्यन्त ही प्रौढ निबन्धग्रन्थ है। इसके रचयिता श्री देवण्णभट्ट हैं। इनका नामोल्लेख प्राचीन धर्मशास्त्रीय निबन्धकारों में होता है। इनका समय काल विक्रम की बारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में है। इनके

१ धर्मशास्त्रांक, कल्याण, वर्ष-७० पृ ३२५, धर्मशास्त्र का इतिहास भाग-१, पी.वी.काणे, पृ.७७, कृत्यकल्पतरु, शुद्धिकाण्ड -१९५० प्रीफेस, Studies in Nibandhas, Bhabatosh Bhattacharya,pp. 1-6, 1968

२ मनुस्मृति ८.३ पृ. ८७४, षट् व्याख्याप्यो परिष्कृत, मुम्बई, ई १८८६

Scanned with CamScanner

पिता के श्रादित्य भट्ट सोमयाजी थे। ये दक्षिण प्रदेश के निबन्धकार हैं। दक्षिण भारत में व्यवहार एवं न्याय-सम्बन्धी निर्णयार्थ स्मृतिचन्द्रिका को अत्यन्त ही प्रामाणिक माना जाता है। यह एक विशालकाय ग्रन्थ है, जो कि काण्डों में विभक्त है। निबन्धग्रन्थों के वैशिष्ट्यों के अनुकूल इसमें श्रुति-स्मृति व पुराणेतिहास में विवेचित तथ्यों को सङ्कलित किया गया है। इसमें प्रधानतया संस्कार, आह्निककृत्य, व्यवहार, श्राद्ध एवं आशौच-विषयक संग्रह है। प्रायश्चित्त-सम्बन्धी विवरण भी इनके द्वारा संगृहीत बताये जाते हैं। 'स्मृतिचन्द्रिका' में अपरार्क, देवस्वामी, धूर्तस्वामी, धर्मदीप, मेधातिथि, विज्ञानेश्वर, विश्वरूप आदि प्राचीन निबन्धकारों के मतों को प्रमाण रूप में उद्धृत किया है। परवर्ती निबन्धग्रन्थों यथा चतुर्वर्गचिन्तामणि, सरस्वतीविलास, तथा वीरमित्रोदय आदि में स्मृतिचन्द्रिका के अनेकानेक तथ्यों को प्रमाणरूप में अङ्गीकृत किया है। प्रायशः सभी परवर्ती निबन्धकारों ने स्मृतिचन्द्रिका को सहायक के रूप में ग्रहण किया है।

स्मृतिचन्द्रिका में कई स्मृतियों को उल्लेखित किया है। इसके व्यवहाराध्याय में सर्वाधिक रूप से बृहस्पति व कात्यायन को आदर्श रूप में उद्धृत किया है अतः इन दोनों ही स्मृतियों के ६०० श्लोक उद्धाहरण के रूप में लिये गये हैं।

(४) जीमूतवाहन प्रणीत धर्मरत्न—

बङ्गाल के धर्मशास्त्रकारों में 'जीमूतवाहन' का नामोल्लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जीमूतवाहन पारिभद्रकुल में उत्पन्न हुये थे एवं इनका जन्मस्थान राढा था। जीमूतवाहन ने भोजदेव एवं गोविन्दराज दोनों का नामोल्लेख किया है। बङ्गाल में जीमूतवाहन के साथ ही शूलपाणि एवं रघुनन्दन का भी नाम लिया जाता है एवं इन्हें धर्मशास्त्रीय निबन्धकारों में त्रिदेव माना जाता है। जिनका समय वि. की ११ वीं शती उत्तरार्द्ध था। तथा परवर्ती निबन्धकारों में शूलपाणि, वाचस्पतिमिश्र व रघुनन्दन ने जीमूतवाहन का उल्लेख किया है। ऐसे में जीमूतवाहन का काल गोविन्दराज एवं शूलपाणि आदि के मध्य का समय होना है। परन्तु इनके समय को निश्चित एवं संख्यात्मक मान देना असम्भव है।

इन्होंने तीन ग्रन्थों की रचना की थी— कालविवेक, व्यवहारमातृका तथा दायभाग। इन तीनों ग्रन्थों को धर्मरत्न के रूप में एकत्र सङ्कलित किया। इस प्रकार धर्मरत्न एक बृहदाकार ग्रन्थ है। कालविवेक में काल सम्बन्धी विषयों का, यथा ऋतु, मास, धार्मिक क्रिया के समय कालगणना शुभाशुभ विवेचन, उपाकर्म, उत्सर्जन, अगस्त्योदय, विष्णुशयनोत्थान, चारमास, दुर्गोत्सव आदि का विशेद विवरण प्राप्त होता है।

व्यवहारमातृका में व्यवहार-विधियों का तथा दाय-भाग में सम्पत्ति विभाजन सम्बन्धी विधिसूत्रों को लिखा गया है। इसमें १८ व्यवहारपदों, प्राड्विवाक् शब्द की व्युत्पत्ति, योग्यता, विविध प्रकार के न्यायालयों, सभ्यों (ज्यूरी) के कर्त्तव्य, व्यवहार के चारस्तर, आदि।

पैतृक धन के विभाजन पर अत्यन्त ही विशद विवेचन हमें दायभाग में प्राप्त होता है यथा पैतृक सम्पत्ति में स्त्रियों का अधिकार, रिक्थ (वसीयत), पुत्रहीन के धन के अधिकारी तथा गुप्तधन आदि विषयों पर महत्त्वपूर्ण विवेचन है। यह १५ अध्यायों में विभाजित है। दायभाग व मिताक्षरा के मुख्य विभेद है कि दायभाग में पुत्रों के जन्म से पैतृक सम्पत्ति मे अधिकारी नहीं है, पिता के स्वत्व के स्वर्गस होने पर ही पुत्र दाय पर अधिकार प्राप्त करते हैं। अथवा पिता की अनुमति से सन्तान में सम्पत्ति विभाजन किया जा सकता है तथा अन्य कई विषय सगोत्रता पर निर्भर करते हैं। जबकि मिताक्षरा ने इसके विपरीत मत रखा है। भारतीय ब्रिटिश न्यायालयों की स्थापना वि.सं. १८२० (ई. १७६३) के समय दायभाग को आवश्यक एवं प्रामाणिक

Scanned with CamScanner

मध्यकालीन धर्मशास्त्रीय निबन्धकारों में इनकी विशेष प्रतिष्ठा रही है। श्रावणी आदि महापर्वों एवं विवाह आदि संस्कारों के समय पढ़ा जाने वाला विशेष सङ्कल्प इनके ग्रन्थ में ही लिखा गया जो वर्तमान में हेमाद्रिसङ्कल्प के नाम से जाना जाता है। यह सङ्कल्प अत्यन्त ही पाण्डित्यपूर्ण है। इससे अखिल ब्रह्माण्डादि देश एवं सृष्टि से अद्यावधि पर्यन्तकाल का पूर्ण परिज्ञान हो जाता है। इन्होंने अन्यान्य कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की परन्तु इनका प्रमुख ग्रन्थ चतुर्वर्गचिन्तामणि ही है। इसे सनातन धर्म के धार्मिक कृत्यों, आचार, धार्मिक निर्णयों का विश्वकोष कहा जाता है। इस महाग्रन्थ को इन्होंने पाँच खण्डों में लिखने का निश्चय किया था। १. व्रत, २. दान, ३. तीर्थ, ४. मोक्ष और ५. परिशेष। पञ्चम परिशेष खण्ड पुनः चतुर्धा विभक्त था— १. देवता, २. कालनिर्णय, ३. कर्मविपाक तथा ४. लक्षण-समुच्चय। परन्तु वर्तमान में व्रतखण्ड, दानखण्ड, श्राद्धखण्ड, कालखण्ड तथा प्रायश्चित्तखण्ड उपलब्ध हैं। तीर्थखण्ड तथा मोक्षखण्ड प्रकाश में नहीं है।

इस प्रकार अनेकानेक खण्डों में विभक्त हेमाद्रि-विरचित यह 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' ग्रन्थ धर्मशास्त्रीय विषयों का महाकोश है। इसके प्रणयन में मूलतः यही भावना रही है कि जनसामान्य धर्मशास्त्रों के व्यापक स्वरूप का अवबोध करके अपने दैनिक जीवन को पूर्णतः धर्म की मर्यादा में व्यवस्थित कर सके। साथ अपने को साक्षात् धर्मविग्रह भगवान् को प्राप्त करने योग्य बना सके।

हेमाद्रि की अन्य रचनाएँ हैं, यथा— शौनकप्रणवकल्प का भाष्य, कात्यायन के नियमानुकूल श्राद्धकल्प, मुग्धबोध व्याकरण के प्रणेता बोपदेव के मुक्ताफल नामक ग्रन्थ पर कैवल्यदीपक नामक भाष्य। बोपदेव हेमाद्रि की छत्रछाया में ही प्रतिफलित हुये थे। वाग्भट के अष्टाङ्गहृदय पर हेमाद्रि ने आयुर्वेदरसायन नामक टीका लिखी। इन्होंने स्वयं का जो परिचय दिया है, उससे इनका समय वि. १३१७-१४२७ (ई. १२६०-१३७०) का है। हेमाद्रि ने अपरार्क, आपस्तम्बधर्मसूत्र, कर्कोपाध्याय, गोविन्दराज, गोविन्दोपाध्याय, त्रिकाण्डमण्डन, देवस्वामी, निर्णयामृत, न्यायमञ्जरी, पण्डितपरितोष, पृथ्वीचन्द्रोदय, बृहत्कथा, बृहद्वार्तिक, भवेदव, मदननिघण्टु, मधुशर्मा, वामदेव, वृद्धशातातप के भाष्यकार, शिवदत्त, मेधातिथि, विधिरत्न, विश्वरूप, स्मृतिप्रदीप, स्मृतिमहार्णवप्रकाश, स्मृत्यर्थसार को उद्धृत किया है।

(१२) आचार्य सायण-माधव और उनके धर्मशास्त्री ग्रन्थ—

आचार्य सायण का नाम जगत् प्रसिद्ध है। आधुनिक समय में वेदोधारक के रूप में वे सुविख्यात हैं। वेदों की चर्चा होते ही इनका सर्वप्रथम नाम-स्मरण हो जाता है। इन्हीं के बड़े भाई थे माधव, जो कि माधवाचार्य या विद्यारण्य स्वामी के नाम से सुविख्यात रहे। ख्याति में शङ्कराचार्य के उपरान्त इन्हीं का नाम आता है। इन दोनों भाइयों के पुण्य कार्यों एवं विद्या व्यसन अत्यन्त ही श्रेष्ठ था। इनके साथ विद्वानों का विशाल समूह था। सायण आन्ध्रप्रदेशीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम मायण था एवं माता का नाम श्रीमती। इनके एक अनुज भी थे जिनका नाम भोगनाथ था। माधवाचार्य व उनके भाई बौधायन-चरण वाले भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण थे। सायणाचार्य कृत वेदभाष्यों के अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग विश्लेषणों के आधार पर इनके समय का निर्धारण किया जा सकता है। सायणाचार्य बुक्कमहाराजा वि.सं १४२१-१४३५ (ई. १३६४-१३७८) के समकालीन थे। ये तथ्य उनके द्वारा लिखे ऋग्वेदीय भाष्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है— **वैदिकमार्गप्रवर्तक-श्रीवीरबुक्कसाम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीयवेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिताभाष्य प्रथमाष्टके प्रथमोऽध्यायः** इति। इस वाक्य से ये महाराजा बुक्क के समकालीन प्रमाणित होते हैं। पुनः महाराजाहरिहर द्वितीय विक्रमी १४३६ -१४४४ (ई.

Scanned with CamScanner

१३७९-१३८७) के अमात्यपद पर आजीवन रहे। अतः इससे ये ही प्रमाणित होता है कि इनका समय वि. की चौदहवीं शताब्दी का है। आधुनिक विज्ञान के विद्वान् सायण के ऋग्वेदीय भाष्य में लिखित भाष्य से स्पष्ट रूप से स्वीकारते हैं कि सायण ने सूर्य से पृथ्वी तक सूर्य के प्रकाश की किरण के पहुँचने लगने वाले समय की बात लिखी है तथा अपने वाक्य 'स्मर्यते' शब्द का प्रयोग करके स्पष्ट कर दिया है कि वे अपने से पूर्व के वाक्यों को पुनः उद्धृत कर रहे हैं। सायण यजुर्वेदीय ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुये थे। आचार्य सायण व उनके बड़े भाई माधवाचार्य के गुरु आचार्य विद्यातीर्थ, भारती तीर्थ एवं शङ्करानन्द का नाम प्रसिद्ध हैं। इन दोनों भाइयों के संरक्षण में भारतवर्ष के अनेक विद्वान् इन्हीं के अनुयायी रहे हैं। इनका पाण्डित्य एवं धर्मनिष्ठा, वेदनिष्ठा अपूर्व थी।

वेदों के भाष्यकर्त्ता के रूप में आचार्य सायण की प्रसिद्धि सर्वत्र प्रचरित थी। ऋग्वेदादि ग्रन्थों एवं प्रत्येक वेद के आरण्यक, ब्राह्मणादि ग्रन्थों पर इनके भाष्य सम्प्रति उपलब्ध होते हैं, ये उनकी सर्वाधिक सेवा है। सायणभाष्य के बिना वेदमन्त्रों का अर्थ लगाना कठिन ही नहीं असम्भव है। आचार्यसायण ने वेदों के भाष्य लिखकर धार्मिक जगत् का महान् उपकार किया है। इसके अलावा इन्होंने अनेक धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों का प्रणयन भी किया— १. पुरुषार्थ-सुधानिधि, २. दत्तकमीमांसा, ३. स्मृतिसंग्रह, ४. कुरुक्षेत्र-महात्म्य, ५. पराशरमाधवीय। यह पराशरमाधवीय पराशर-स्मृति का विस्तृत भाष्य है। यह अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसका नाम आचारमाधवीय तथा पराशरमाधवीय भी है। ६. कालनिर्णय या कालमाधवीय भी धर्मशास्त्र का एक प्रौढ़ ग्रन्थ है। इसमें पाँच प्रकरण हैं— १. उपोद्घात, २. वत्सर, ३. प्रतिपत्प्रकरण, ४. द्वितीयादि तिथिप्रकरण तथा ५. प्रकीर्ण-प्रकरण। काल-निर्णय विषय से सम्बन्धित यह एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त श्रीविद्यार्णव, माधवीय, धातुवृत्ति, जैमिनीय न्यायमालाविवरण, विवरणप्रमेयसंग्रह, पञ्चदशी तथा जीवन्मुक्तिविवेक आदि मुख्य ग्रन्थ हैं।

इन्होंने अपने ग्रन्थों में एक ही तथ्य दिया एवं प्राणी मात्र की सेवा ही की है। वर्तमान में स्वयं को वेद का समर्थक कहकर सनातन परम्परा में विहित स्मृति पुराणों का खण्डन करने वाले कई भ्रान्त जनसमूह द्वारा अपने लेखों में सायण को अपमानित किया जाता है। निश्चित ही ये उनके मन में सायण के प्रति अकारण द्वेष है। जिसका शमन सृष्टिनियामक स्वयमेव करेंगे।

अभिलेखों से ज्ञात होता है कि माध्वाचार्य वि.सं. १४३४ (ई. १३७७) में संन्यासी हो गये। संन्यास लेने के उपरान्त उनका नाम विद्यारण्यस्वामी हुआ। ये दीर्घायु थे जनश्रुति के अनुसार ये १०० वर्ष से अधिक समय तक जीवित थे।

(१३) श्रीदत्त उपाध्याय—

मध्ययुगीन मैथिल धर्मशास्त्रीय निबन्धकारों में श्रीदत्त उपाध्याय का नाम अत्यन्त सम्मान के साथ लिया जाता है। इन्होंने अनेक धर्मशास्त्रीय निबन्ध ग्रन्थों का प्रणयन किया। जिनमें आचारदर्श, छन्दोगाह्निक, समयप्रदीप, पितृभक्ति तथा श्राद्धकल्प। इनके ग्रन्थ आचारदर्श में दैनिक धार्मिक कृत्यों जिसे आह्निक कर्म कहा जाता है उनका सविस्तार वर्णन किया है। इस ग्रन्थ में दामोदर मैथिललिखित आचारदर्शबोधिनी नामक टीका भी है। श्रीदत्त उपाध्याय जी ने सामवेदियों के लिये छन्दोगाह्निक तथा श्राद्धकल्प नामक ग्रन्थ लिखे। 'समयप्रदीप में व्रतों के समय का विवेचन प्राप्त होता है। यजुर्वेद के अनुसार कार्यों के सम्पादन करने वाले यजुर्वेदी शाखानुयायियों के लिये श्राद्धकर्म से सम्बन्धित 'पितृभक्ति' का लेखन किया। श्रीदत्त का समय वि. की १४वीं शती के मध्य का है। श्रीदत्त ने कल्पतरु, हरिहर, व हलायुध की कृतियों का नामोल्लेख किया है।

Scanned with CamScanner